श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

गोस्वामीश्रीहरिकृष्णशास्त्रिविरचित

श्रीआचार्यविजय

हिन्दी अनुवाद
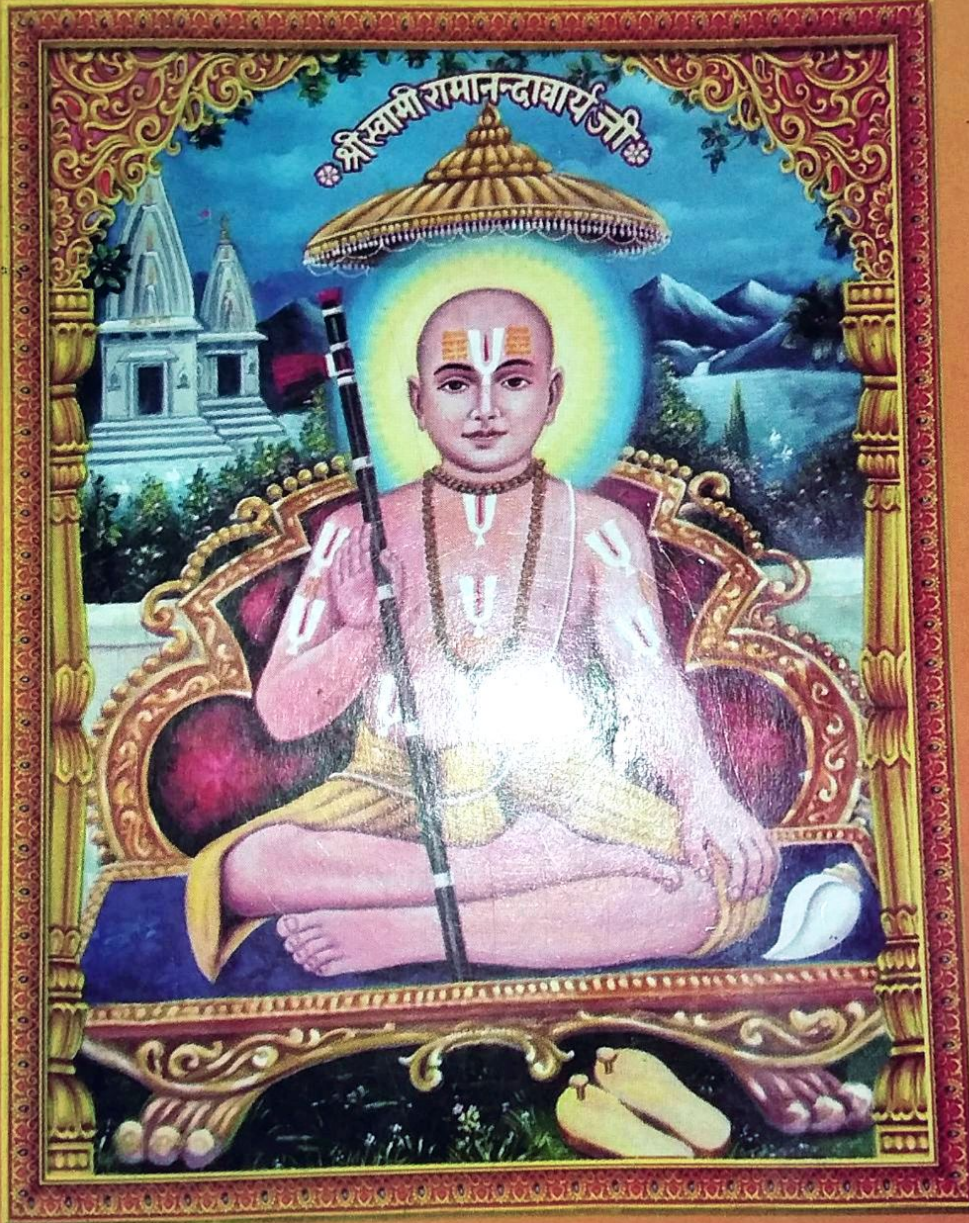
आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इव भास्करः।
रामानन्द इति ख्यातो लोकोद्धरणकारणः।।

प्रकाशक
डॉ. स्वामी राघवाचार्य वेदान्ती
जगद्गुरु अग्रदेवाचार्यपीठ श्रीजानकीनाथ बड़ा मन्दिर, रेवासा (सीकर)

श्रीगणेशाय नमः ।।   श्रीजानकीवल्लभो विजयते ।।   श्रीमतेरामानन्दाय नमः ।।

श्रीगोस्वामी हरिकृष्ण शास्त्री विरचित

आचार्यविजय

पूर्वार्द्ध

पं. श्रीगयाप्रसाद शास्त्री

श्रीतुलसीदासनव्यन्यायाचार्य एवं श्रीहरिशंकरदास वेदान्ती विरचित

हिन्दी अनुवाद

पहले ब्रह्महि प्रकट करि वेद दिये पुनि ताहि ।
सर्वप्रकाश राम की शरण गहौ मै हर्षाहि ।।
ब्रह्मविरचि निज वदन ते वेद दिये है जाहि ।
और सृष्टि रचना करी आत्म बद्धि उपजाहि ।।
सतचित धन आनन्द जो परमानन्द स्वरूप ।
जगकर्ता रामहि नवहुँ जो सकल भुवन के भूप ।।

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले अपने नाभि कमल में से ब्रह्मा को उत्पन्न करते हैं, उत्पन्न करके उन्हें निःसन्देह समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जो अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए अपने भक्तों के हृदय में तदनुरूप विशुद्ध बुद्धि को प्रकट करते हैं उन सर्वशक्तिमान् प्रसिद्ध देव पर ब्रह्म पुरुषोत्तम की मैं मोक्ष की अभिलाषा से युक्त होकर शरण ग्रहण करता हूँ ।।१।।

जिसने सर्वप्रथम स्वनाभिकमल से लोकपितामह ब्रह्मा को प्रकट किया तदनन्तर जिसने ब्रह्मा को अपने श्रीमुख से समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान किया । जो सर्वत्र व्याप्त हैं जो अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए अपने भक्तों के हृदय में विशुद्ध बुद्धि को प्रकट करते हैं (ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते (गी. १०, १०) जो सर्ग क्रिया के समुद्भासक हैं जिसका किसी भी काल में बाध नहीं होता है जो ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त हैं,

अद्वितीय परमानन्द स्वरूप हैं उन अशेषब्रह्माण्ड के समुन्नायक सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिनायक परमात्मा श्रीसीतारामजी के द्वारा विनिर्मित पूर्णतया प्रसृत एवं विस्तृत इस धरा धाम पर सदा पुण्यमात्रैक प्राप्य भव्य शिष्टजनसर्वस्व, जहाँ धर्म का प्रसार (विस्तार) अविच्छिन्न रूप से होता रहता है, पृथिवीतल पर विद्यमान सम्पूर्ण तीर्थों के मुकुटमणि, जहाँ सर्वत्र स्वाभिमान से उन्नत एवं धर्म प्राण स्वरूप परम पवित्र सन्त मण्डली विराजमान है ऐसे पुण्य धाम तीर्थराज प्रयाग में निज निज वर्ण एवं आश्रम धर्म के अनुसार अपने-अपने सदाचार परिपालन में परमप्रवीण विभिन्न जाति के मनुष्य रहते थे और जहाँ प्रबलतमपाप समूहों के प्रक्षालन में भी परम समर्था, अन्य नदियों की अपेक्षा अधिक मञ्जुल और अमोघ महिमा मण्डिता, मन्द मन्द एवं क्वचिद् अमन्द तरङ्गरङ्गों से सम्मानिता होती हुई भी कामारि भगवान् शिव के जटाजूट में विहार करने वाली, अशेषजीवों को सम्यग्रूपेण तारने वाली पापों को दूर करने वाली भगीरथ नन्दिनी श्रीगङ्गाजी नित्य प्रवहमाना हैं ।

चिरकालीन विरह से शोकाकुल (व्याकुल) होने पर भी अत्यन्त सुस्वादु अपनी सहोदरीबहन के समागमजन्य सुख प्राप्ति के लिए अति आतुरा, त्वरा के कारण तीव्रवेग से फैलती हुई, तेज धारावाली सर्वप्रणम्या कलिन्द पुत्री श्री यमुनाजी जहाँ अचानक आकर स्नेहाधिक्य के वशीभूत होकर प्रिय बहन देव नदी श्रीगङ्गा में प्रविष्ट सी होती हुई सुसङ्गता हो गई । दोनों भगिनियों के परस्पर सम्मिलन जन्य उल्लास सुख को देखने की इच्छा करती हुई अव्यक्तशरीरा सरित्प्रवरा श्रीसरस्वती नदी भी आकर श्रीगङ्गा में और श्रीयमुनाजी में मिल गयी । इस प्रकार तीर्थराज प्रयाग की पावन भूमि पर श्रीगङ्गा, यमुना और सरस्वती की अति मनोहरा त्रिवेणी ऐसे विराज रही है मानो विश्व के अलङ्कारभूत सुन्दरियों की मल्लिकादि विविध पुष्पों से समुद्ग्रथिता वेणी शोभा पा रही हो ।

वहीं दुःखेन दमनार्ह दानवस्वरूप दयादानादि धर्मों से विमुख दीनहीनों का दमन करने से कुटिल, निरन्तर पाखण्ड ताण्डव के द्वारा प्रसारित अपने कुटिल कुचक्र के घेरे में आये हुए सीधे-साधे मनुष्यों के सर्वस्व का अपहरण करने वाले कुत्सित कर्म करने वालों के कुत्सित प्रवृत्ति

एवं कुत्सित चेष्टा समूह के नाश करने वालों में ख्याति प्राप्त चतुरों में भगवान् नारायण की तरह करुणा सागर अत्याचारापहर्ता श्रेष्ठ कर्मजनक सुन्दर चरित्रोंका प्रचार-प्रसार करने वाले, एकमात्र दीनों की रक्षा में अपने समय को बिताने वाले कान्यकुब्जब्राह्मणवंश भूषण विद्वज्जनों के भी सम्मान्य, सुन्दर कर्मनिचय के सदुपदेश से प्रसन्न रखने वाले अपने पोष्य वर्ग में विधाता की अद्‌भूत सृष्टि की तरह अपवर्ग पथ के पथिक, चारों तरफ प्रवृत्त पाप और दुष्कर्म के नाश करने वाले पण्डित प्रवर श्रीपुण्यसदनजी निवास करते थे ।

वस्तुतः 'यथानाम तथा गुण' वे पुण्यसदन अपने नाम को पूर्णतया चरितार्थ कर रहे थे । उनके ज्ञान विज्ञान एवं सदाचार के प्रखर प्रताप एवं प्रकाश से विधर्मी उलूकगण उनकी ओर देखने का साहस न करते हुये मानों अपने घरों की अँधेरी गुफाओं में रहकर ही जीवन-यापन कर रहे थे ।

ऐसे प्रबल प्रखर व्यक्तित्व से अकारण ही बैर, ईर्ष्या एवं द्वेष रखने वाले दुराचारियों ने एकत्र होकर उनके भव्य भवन को विविध रासायनिक विस्फोटक पदार्थों के द्वारा भस्मीभूत करने का षडयन्त्र रचा । किन्तु वे अपने इस षडयन्त्र में असफल रहे ।

सर्वत्र साक्षात् भगवान् के भक्त एवं भगवान् के सच्चरित्ररूपी सुधा से सिंचित सदाचारी लोगों से व्याप्त प्रदेश में उस समय प्रत्येक नगर, प्रत्येक ग्राम, एवं प्रत्येक पावन प्रान्त, दुर्दान्त दुराचारियों की दुष्चेष्टाओं का शिकार हो रहा था । पवित्र से पवित्र कोई भी ऐसा स्थान नहीं बचा जिसको अत्याचारियों ने अपने कुकृत्यों से कलुषित न कर दिया हो । मन्दिर तोड़े जा रहे थे, पण्डित पीड़ित किये जा रहे थे । पाखण्डों का पोषण हो रहा था । लुटेरों का वर्चस्व बढ़ रहा था । ललनाओं एवं पतिव्रताओं को धर्म कर्म से भ्रष्ट किया जा रहा था । तथापि ऐसे दुर्घट काल में भी पण्डित पुण्यसदन के प्रबल प्रताप के प्रभाव से प्रयागराज के समीपस्थ पुण्य प्रदेश एवं देवालय बाधाओं से मुक्त थे ।

शील-सद्‌गुण सम्पन्न एवं सदाचार परायण पुण्यसदन का अनुकरण कर सभी पड़ोसी एवं आस-पास के लोग भी सदाचारी बन गये थे । जिस प्रकार के सद्‌गुणों से सम्पन्न वे थे उसी प्रकार मन, वाणी एवं कर्म से पवित्र,

प्रशंसनीय चरित्र समस्त महिला समाज के लिए आदर्श, समस्त सद्गुणों के सागर, परम उदार सर्वथानुकूल धर्म मूल का आधार सर्वजन अनुकरणीय, शील स्वभाववाली उनके कुल की श्रेयस्करी प्रेयसी धर्म पत्नी श्रीसुशीला देवी थी । वे सभी प्रकार से सम्पन्न परिवार की गृह स्वामिनी होते हुए भी अत्यन्त सामान्य वेषभूषा से ही प्रेम करती थी । पूर्णतपस्विनी के समान सौशील्य सद्भावना से परिशुद्ध अन्तःकरण वाली थी । उनका जीवन सर्वथा पति सेवा से ओत प्रोत था । श्रीसीतानाथ रघुनाथ के पद पंकज पराग अनुराग भगवत्सेवा और धर्माचरण को ही श्रेयस्कर मानती हुई गुरुशास्त्रादि वचनों में परम श्रद्धा विश्वास रखने वाली, हर समय अपने प्रियतम के मन को हरण करने वाली, शम दम दया दानादि में समर्पित चित्तवाली, अपने परिजनों व सेवकों को सामर्थ्यानुसार धनादि के द्वारा पोषण करने वाली, निजकुलोचित मर्यादा के पालन करने में प्रवीण, हमेशा पूजनीय सासु ससुर की सेवा के साथ समस्त कुटुम्बियों के पालन रूप परम धन से संयुक्त, कामना से रहित प्रतिक्षण श्रीसीताराम चरणारविन्दों की उपासनारूपी भक्ति भूषण से युक्त, समस्त दुर्गुणों से रहित, देव वधू के समान शीलवाली श्री सुशीला देवी देवालय की तरह श्री पुण्यसदन जी के घर में सुशोभित थी ।

श्रीपुण्यसदन भी समस्त युवति वृन्दों में अलभ्य गुणों से युक्त साक्षात् अरुन्धती की तरह सतत पति सेवानुरागिणी पतिव्रता, मैत्रेयी की तरह माया और मोह पःलों से रहित ब्रह्म ज्ञान से युक्त गम्भीर स्वभाववाली, पृथ्वी की तरह धीर स्वभावा, उत्तम विद्या के समान राजमाना विज्जिका के समान वैदुष्यपूर्ण अन्तः करणवाली, हंसिनी के समान नीर क्षीर विवेक सम्पन्ना सुन्दरशील स्वभाववाली श्रीसुशीला जैसी धर्मपत्नी को प्राप्त करके जैसे अपने को परम सौभाग्यशाली मानते थे उसी प्रकार वह भी ऐसे परम भागवत, श्रद्धालु, तपोमूर्ति, विद्वान्, ज्ञान विज्ञान से युक्त और सर्वतोभावेन अत्यन्त श्रेष्ठ अरुन्धती जैसे श्रीवशिष्ठ को, प्रसन्न मुखवाली क्षीरसागर पुत्री श्री लक्ष्मी जैसे भगवान नारायण को, सर्वपूज्या पर्वतराज पुत्री पार्वती जैसे तपः समाधिनिष्ठ भगवान् शंकर को, पातिव्रत्य प्रभा पुञ्ज से प्रकाशित प्रदेश वाली तेजो विशेष प्रभा जैसे भगवान् सूर्य को, सौशील्यादिसद्गुणोल्लासित परम आह्लाद को प्रकट करने वाली चन्द्रिका जैसे चन्द्रमा को अपने से अभिन्नचित्तवृत्ति को धारण करने वाले दो शरीर होते हुए भी एक प्राण वाले सर्वथा चित्त को

चुराने वाले अपने प्रिय स्वामी को पाकर प्रतिदिन आनन्दित होती हुई छाया की तरह उनका अनुसरण करती हुई उनको प्रसन्न रखती थी । लोगों ने उन दोनों दम्पतियों में मिथट महादेव और उनकी शक्ति पार्वती की तरह, विजय और श्री की तरह, गुण और कीर्ति की तरह, धर्म और अपूर्व की तरह, सुन्दर पुष्प और सुगन्ध की तरह, मिश्री और मिठास की तरह तथा घी और स्निग्धता की तरह सुदृढ़ानुरागपूर्वक एकत्व का अनुभव किया ।

नक्षत्र मण्डल में सुशोभित चन्द्रमा की तरह अपने बन्धुबान्धवों से युक्त होते हुए भी पं. श्रीपुण्यसदन जी मानवोपभोग की समस्त साधन सम्पत्ति से सुसज्जित दिव्य भवन में रहते हुए भी अपने को कुटीचर ही मानते थे । तात्कालिक धनकुबेरों के बीच प्रतिष्ठित होते हुए भी अपने दैनिक क्रियाकलापों को साधारण मानवों के समान करते हुए संचित धन का उपयोग दीनों के दैन्य को दूर करने के लिए करते थे अपने उपभोग के लिए नहीं, अपने कोठार में विविध अन्नों के संग्रह का उपयोग असहाय और क्षुधापीड़ित मानवों के क्षुधा निवृत्ति के लिए करते थे केवल अपने भरण पोषण के लिए नहीं । अपितु प्राणियों के पोषण के लिए नाना प्रकार के वस्त्रों के होते हुए भी केवल धोती और उत्तरीय मात्र से प्रेम करते हुए वस्त्रविहीनों को वस्त्र प्रदान करते थे । एवं अहर्निश गो और ब्राह्मणों की परिचर्या में अपने चित्त को लगाये हुए समारब्धयज्ञादि अनुष्ठान और परम्परानुरूप उपासनादि में अपने ज्ञानविज्ञान का उपयोग करते थे । अनवरत अतिथि सेवा के बहाने उपकार में ही अपने द्रव्य के सदुपयोग का चिन्तन करते हुए हर समय सम्पूर्ण साधारण मानवों की सेवा की । श्री पुण्यसदन जी का प्रखर वैदुष्य धर्मोपदेश, शास्त्रों के प्रवचन, शौचाचार विचार ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए था केवल मिथ्या आडम्बर के लिए नहीं, आपकी विद्वत्ता का प्रकाश वैदिक क्रियाकलापों को करने के लिए एवं मानव समाज में बन्धुत्व की भावना जगाने हेतु घर-घर गली-गली व जन जन में एकाएक संकट की घड़ी में अनायास एकत्रित होकर परस्पर सहयोग प्रदान करने हेतु संघटन की भावना से रहना चाहिए न कि द्वेष भावना से इस प्रकार के प्रवचन सदुपदेश प्रसारित किये जाते थे "जहाँ धर्म वहीं विजय" इस उद्घोष को तो ये महानुभाव हर समय कोने-कोने में प्रसारित करवाते थे ।

सर्वप्रथम उन्होंने दृढ़ आत्मज्ञान का उपयोग स्वयं ही अपने ऊपर किया-उनका मानना था- "धन तो पृथ्वी में ही गड़ा रह जायेगा, या कोष में ही जमा रह जायेगा। अन्तिम यात्रा में साथ नहीं जा सकेगा पशु भी शालाओं में ही बँधे रह जायेंगे। प्राण प्रिया पत्नी भी अपने सुखों का स्मरण करती हुई रोती हुई गृहद्वार तक ही जायेगी। स्वजन बन्धु बान्धव और मित्रादि शव के साथ श्मशान तक ही जा सकेंगे। यह सम्यक् लालित पालित एवं अलंकृत शरीर भी चिता तक ही जा सकेगा। इस लोक के पश्चात् ऊर्ध्वलोक में तो १७ तत्त्वों वाले सूक्ष्म देह के साथ जीवात्मा पुण्य पाप, ईश्वर स्मरण के सहित अकेला ही जाता है अतः सर्वदा मंगलमय आनन्दमय श्रीसाकेतबिहारी के पदपंकजपराग से सिंचित असंख्य आनन्दमयी अहेतुकी भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि मुक्ति तो भक्ति की दासी है अतः भक्ति के अतिरिक्त समस्त लौकिक सुख मृग मरीचिका के समान अस्थिर एवं शुक्ति में रजत के समान तुच्छ हैं ये जीव को केवल मोहित करने वाले हैं कल्याणकारी नहीं।

अतः दोनों पतिपत्नी (श्रीपुण्यसदन एवं सुशीलादेवी) सदाचार से युक्त जपदान यज्ञ यागादि धार्मिक कार्यों का सतत सम्पादन करते हुए अपने धन का उपयोग अनाथ असहाय विकलांग जनों के जीवनोपयोगी सामग्री उपकरण आदि के वितरण करने हेतु करते थे। स्वयं की भी साधारण लोगों के समान कम साधनों का उपयोग करते हुए अभिमानरहित दिनचर्या थी।

उस समय उन दोनों की देवताओं को लुभाने वाली दिनचर्या को देखकर लोग आश्चर्य चकित हो देखते हुए भी विश्वास नहीं कर पाते थे क्योंकि लक्ष्मी सरस्वती सदा एक जगह नहीं रहती हैं परन्तु दोनों होड़ के साथ पुण्यसदन के घर में खजाने के रूप में लक्ष्मी जी एवं जिह्वा पर श्रीसरस्वती जी बड़े उल्लास स्नेह एवं अनुराग के साथ निवास करती थी।

इस प्रकार अनेक दास दासियों के रहते हुए भी आप दोनों समस्त लौकिक अलौकिक एवं भगवत्सेवा को अपने हाथों से करते हुए भगवान् के चरणकमलों के पराग का आस्वादन कर लौकिक चिन्ताओं से रहित थे। केवल भगवान् श्रीसीतानाथ रघुनाथ का भजन पूजन, स्मरण, श्रवण, स्तवन, पठन, पाठन, कथा सुनना, सुनाना आदि सत्कार्यों में हमेशा अनुरक्त रहते हुए अपनी उदारतादयादि गुण रूपी सुयश चन्द्रिका से दिशाओं को निर्मल करते हुए प्रयागराज में श्रीमान् पुण्यसदन और सुशीला देवी रहते थे।

दूसरा परिच्छेद

प्रभुकृपा से सर्वविध सुख साधन सम्पन्न सदन में रहकर उनकी ही कृपा प्राप्ति हेतु संलग्न और यदाकदा उपलब्ध भगवद्दर्शन के आनन्द में निमग्न परमार्थ पथ पर चलते हुए दम्पत्ति के आयु के तीन भाग बीत गये ।

किन्तु अब भी अपने मनोरथ के अनुकूल अपनी वंशलता के अंकुरण का अवसर नहीं आ पाया । उन्हें विविध रत्नों के भण्डार में भी निज गृह रत्न का दर्शन नहीं हो रहा था । चारों दिशाओं में जलती दीपमालिका के मध्य भी कुल दीपक के अभाव में अन्धकार दिखाई पड़ रहा था । परिजनों की उपस्थिति से वर्द्धित कोलाहल भी निवास भवन को शब्द शून्य जैसा बना रहा था ।

सुशीला भीतर से दुखी रहते हुये मन के भावों को छिपाकर प्रसन्न दिख रही थी, ताकि प्राणप्रिय पति के मन में पुत्राभाव की चिन्ता या खेद उत्पन्न न हो । जैसे मयूर अपने पंखों को फैलाकर जब नृत्य करता है तो बड़ा प्रसन्न होता है । किन्तु जब उसकी दृष्टि अपने पैरों पर जाती है तो दोनों नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है । वैसे ही संतान के अभाव की चिन्ता से संतप्त हृदय पुण्यसदन ऐश्वर्य, प्रताप, सुयश एवं सुख के बीच रहते हुये भी प्रसन्न नहीं थे । उन्हें अपने पुत्र के सुखद आलिङ्गनरूपी सुख से रहित होने के कष्ट से निवृत्ति का कोई मार्ग या उपाय समझ में नहीं आ रहा था ।

इस प्रकार पुत्राभाव से उत्पन्न व्यथा से व्यथित धीर गम्भीर होते हुए भी अधीर के समान उन्होंने अपनी प्रियतमा को अपनी बात सुनाना प्रारम्भ किया "देवि ! क्या कहूँ ? आज धैर्य का भी धैर्य नष्ट हो रहा है । वृद्धावस्था के आगमन से केश धवल हो चले हैं, शरीर की सभी सन्धियाँ शिथिलता को प्राप्त हो चुकी हैं । आयु का मात्र चौथाई भाग ही शेष है । न जाने किस जन्म में कौनसा ऐसा विशेष पाप कर्म हम लोगों के द्वारा किया गया है जिसके कारण अद्यावधि सुतमुख कमल के अवलोकन का सुख प्राप्त नहीं हो सका । न जाने कब पूर्वजों के पुण्यों के फलस्वरूप वह सौभाग्यशाली क्षण उपस्थित होगा, जब हम दोनों स्वकुल प्रकाशक दीप के प्रकाश में आलोकित होते हुये अपने घर को देखेंगे । पितृऋण से उऋण होंगे ?

अधिक क्या कहूँ ! यह समस्त रत्नराशि गृहरत्न (पुत्ररत्न) के अभाव में अपूर्ण यज्ञ के समान लगता है और सूर्य मण्डल की हजारों रश्मियों द्वारा अन्धकार को नष्ट कर देने के बाद भी प्रकाशमान भवन को अत्यन्त अन्धकार से युक्त भवन के सदृश देख रहा हूँ । श्वेतकेश मैं संसार को भी अत्यन्त शोक से संतप्त अनुमान कर रहा हूँ अपने भविष्यत् जीवन को भी जीवन का अनाधायक और वन्यलोगों से आकुलित ही देख रहा हूँ ।

स्वर्ग सुख तो बहुत दूर की बात है पुत्रविहीन को लोकान्तर में सद्गति प्राप्त नहीं होती । वासनाओं से वासित अन्त:करण वाला वह पुत्रविहीन व्यक्ति मृत्यु के बाद भूतादि योनिबों में यहीं घूमता रहता है ।

यदि किसी पुण्य के बल पर उसे पितृ लोक की प्राप्ति हो भी गई, तब भी शोक ग्रस्त होकर पुत्राभाव के कारण उसे कुछ गरम जल ही पीने के लिये प्राप्त हुआ करता है । उसे पुण्य पर्व में भी पुत्रादि प्रदत्त पिण्ड दान भी प्राप्त नहीं हुआ करता । शीतल जल के अभाव में गर्म जल पीने से दु:खी होते हैं अधिक क्या कहूँ ? हमेशा नि:सन्तान लोगों की अमावस्यादि पुण्य पर्वों पर हव्य और कब्यान्न नहीं मिलते हैं पितृलोक में रहने की जगह भी नहीं मिलती है त्रिशंकु की तरह बीच में ही समययापन करते हैं सन्तानहीनों की अगति और दुर्दशा को सुनकर स्मरण करके मेरा हृदय काँप उठता हैं वे तो स्वच्छन्द अपने पापों का प्रायश्चित भी नहीं कर पाते हैं फिर शुभ कर्मों से उत्पन्न सुख सौभाग्य का अनुभव कैसे कर सकते हैं ।

हे देवि ! मेरे पश्चात् मेरे पूर्वजों की अक्षय तृप्ति के लिए अपने कुल में उत्पन्न शास्त्रीय वचनों के अनुसार गोत्र प्रवर नाम आदि का उच्चारण कर आहूत पितरों को तिलोदक यवोदक कौन देगा ? ब्राह्मण गाय, अग्नि एवं काकादि के निमित्त विधानपूर्वक पंचग्रास निकालकर ब्राह्मण वटु श्राद्ध के माध्यम से कौन पितरों को प्रसन्न करेगा । इस पितृ ऋण से उबारकर वैतरणी के उस पार कौन ले जायेगा । अत: चिन्तारूपी चिता की ज्वाला से आकुलित अन्त:करण वाला मैं सदा अपनी आत्मा को पीड़ित अनुभव करता हूँ जिससे लेशमात्र भी शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता हूँ ।

पितरों के आवश्यक देय (श्राद्ध तर्पणादि) ऋण से वही सौभाग्यशाली मुक्त होता है जो पुत्रवान् होता है । क्या हम लोगों तक ही

हमारी वंश परम्परा चालू रहेगी, इससे आगे नहीं, अत: क्या करूँ ? कौन अनुष्ठान करूँ किसकी शरण में जाऊँ ? किसकी उपासना करूँ ? कुछ निश्चय नहीं हो पा रहा है कहाँ जाऊँ ?

इस प्रकार अपने पति के असाधारण खेद के कारण को सुनकर पहले से ही सन्तान के अभाव की चिन्ता से सन्तप्त अन्त:करण वाली शोक के वेग को न सहन करते हुए, अपने हृदय में ईश्वर के अधीन विषय को मानकर अश्रु प्रवाह को रोककर प्रणामपूर्वक बड़ी विनम्र भाषा में ओठों को स्पन्दित करती हुई श्रीसुशीला बोली ।

हे स्वामिन् ! धैर्य के सीमा स्वरूप धीर धुरन्धर होकर साधारणजन के समान धैर्य की धुरी को गिराकर खोटे कर्म कराने वाली इस चिन्ता से परम धन्य धीराग्रगण्य आप घिर गये हैं जो सदैव प्रसन्न मुद्रा में रहकर अपने पास आये हुए चिन्ता ग्रस्त व्यक्तियों को अपने वचन चातुर्य से विज्ञान नौका में बिठा कर दुष्पार शोक सागर से पार करते हुए, चिन्ता से व्याकुल चित्तवालों को चिन्ता रहित करते हुए, स्वयं उपदेशक होकर अविवेकी पुरुषों जैसे अपने चित्त को अनुचित मार्ग पर ले जा रहे हैं । यह बात कैसे भूल रहे हैं कि सभी सुख दु:ख दैव से प्रेरित हैं । भगवदिच्छा सेआये प्रारब्ध कर्मफल को भगवत्प्रसाद मानकर भोगों को भोगकर समाप्त करना चाहिए । अत: चिन्तारूपी रोग को समाप्त करने के लिए आपको अपने वचनों को बारम्बार समझना चाहिए क्योंकि वे वचन अत्यन्त दु:खी लोगों के लिए औषधि रूप हैं उन वचनों के स्मरण करने से अपने अन्दर स्थित चिन्तारूपी रोग का शमन होगा ।

सुख दु:ख को देने वाला कोई और ही है इस प्रकार का विचार मूर्खता है मैं ही सब कुछ करने वाला हूँ यह केवल अहंकार मात्र है वास्तव में सारा संसार अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के परतन्त्र भी नहीं है कर्मों से कुछ भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि कर्म स्वत: जड और अकिञ्चित्कर हैं कर्म भी अपने नियन्ता के अधीन हैं अत: भुने बीजों की तरह अंकुरजननक्षमता से रहित बीज के समान कर्म भी भगवत्प्रेरणारहित कुछ भी करने में समर्थ नहीं होते अत: कर्मों को फलवान् होने में भगवदिच्छा ही कारण है वह इच्छा करने, न करने, विपरीत करने में सभी प्रकार समर्थ होती है । हम लोग तो प्रभु के अधीनस्थ दास हैं । अत: वे ही हमारे समस्त

शुभाशुभ के स्वामी हैं हम दुराशापिशाची के चंगुल में क्यों पड़े ? कौन जानता है कि भगवान् क्या करना चाह रहे हैं ? हमारे श्रीसीतापति किस रचना को रचना चाह रहे हैं ? अपने भक्तों पर सर्वदा आनन्द बरसाने वाले स्वयं ही उनकी समस्तकामनाओं का विधान करेंगे । वे करुणावरुणालय अत्यन्त खेद खिन्न विकल स्थिति से युक्त अपने भक्त की स्थिति को देखकर कैसे सहन करेंगे ? अर्थात् नहीं कर सकेंगे । किन्तु भक्त को भी अपने समस्त सुखसाधन भगवान् को निवेदित कर कलत्र पुत्र देह गेह धन सम्पत्ति समस्त लौकिक-अलौकिक साधनों के कर्मफलों को भगवान् को समर्पित करके सभी प्रकार के द्वन्द्वों से निश्चिन्त होकर सर्वतो भावेन भगवच्चरणारविन्दों के मकरन्द रसास्वादन को ही एकमात्र लक्ष्य बनाकर निरन्तर भगवान् की उपासना को ही जीवनाधार मानकर असाधारण प्रीतिमान् होना चाहिए । तब कुत्ते की पूँछ के समान सतत कुटिल रहने वाली यह तुच्छ पुत्र मुख दर्शन लालसा जन्य चिन्ता क्या करेगी यह तो भगवद्भावकोहरण करने वाली पिशाचिनी है इससे ज्यादा क्या कहूँ ? आप तो स्वयं भक्ति के रहस्य को जानने वाले भागवत हैं इस प्रकार पति से निवेदन कर श्रीमती सुशीला जी मन्द मुस्कान युक्त मुद्रा में श्री पुण्यसदन जी के समीप में बैठ गयी ।

श्रीसुशीला के भक्ति और धैर्य से युक्त वाणी सुनकर पण्डित पुण्यसदन का भी शीतल मन्द सुगन्धित वायु के सेवन से मूर्च्छारहित व्यक्ति के समान अपनी प्रियतमा के मुखकमल से निःसृत वचनामृत के छिड़काव से समस्त चिन्तारूपी कीचड़ धुल गया और कोमल पत्तों से युक्त कमल की भाँति उनका मुख मण्डल खिल गया तत्पश्चात् भावनारूपी कल्पद्रुम अद्भुत पुष्पसमूह से सुशोभित हो गया । जिससे श्रीपुण्यसदन जी अचानक प्रफुल्लित हो गये तथा बोले देवि ! जो मैं आज तक निष्काम भावना से युक्त अन्तःकरण वाला, बड़े से बड़े संकटों के आने पर भी अकारण करुणावरुणालय श्री सीतापति श्रीकोसलाधीश के चरणों के आश्रित होने से अपार दुःख समूह को भी कुछ नहीं समझता था वह मैं आज समस्त शास्त्रों से अर्जित शास्त्रीय विज्ञान को चिन्ता के कुचक्र में पड़कर भूल गया । अनन्य भगवदाश्रयी ज्ञानवान् होकर भी स्थिर नहीं रह सका आज तक की आराधना से उत्पन्न भगवदासक्ति मुझसे दूर चली गयी । प्रभु पदकमलाश्रयानुराग

एकाएक विलुप्त हो गया मैं पागल जैसे क्यों हो गया ? मेरी अपक्व भावना को धिक्कार है, सामान्य मूर्खों की तरह मैं विचलित कैसे हो गया ?

अतः मैं मानता हूँ कि यह संसार अनेक वृक्षों का उद्यान है जो नाना प्रकार के पौधों की शाखाओं प्रशाखाओं पर सुशोभित पुष्पों का गुच्छा है जिसमें अनेक प्रकार के फल लगे हुए हैं जो नयी नयी भावनाओं से युक्त है, जिसमें मैं, मेरा आदि नाना प्रकार के रंगों से रंगे हुए मनोरथ रूपी हजारों पक्षियों की संख्या में घोंसले बना लिए हैं इससे विशाल परकोटे के अन्दर यह श्रेष्ठतम वृक्ष अत्यन्त मन को मोहने वाला है भगवान् की भृकुटि विलास मात्र से विरचित समस्त संसार की चित्र विचित्र रचना करने में कुशल रचयिता की समस्त सृष्टि लीला स्थली है उसमें मुझ जैसों का मोहित हो जाना भी हमारे प्रभु का खेल ही है ।

किन्तु इस समय आपके मुख कमल से निःसृत वचनामृत से भीगकर मेरी समस्त इन्द्रियाँ स्वस्थ हो गयी है अतःअब मैं इस कल्पना मनोरथ से कभी भ्रमित नहीं होऊँगा । हे देवि ! मैं धन्य धन्य हो गया, जो मैं पूर्व जन्मार्जित पुण्य पुञ्ज के फलस्वरूप आपके विज्ञानरूपी सूर्य की वचनरूपी किरणों का स्पर्श करके मेरे अन्तः नेत्रकमलों के लिए अनवरत आनन्द सुधा बरसाने वाली, हर्षाने वाली, हरक्षण प्रसन्न रहने वाली विदुषी विधाता की अद्भुत नारी सृष्टि में अद्वितीया आप जैसी धर्म पत्नी को पाकर अपने को परम सौभाग्यशाली मानता हूँ । आप जैसी पति परायण पतिव्रतायें पति धर्म में निरत रहकर भगवद् भक्ति से युक्त भगवच्चरणकमलमकरन्द का आस्वादन कराने वाली, माया मोह से रहित भगवत्सेवा में संलग्न, प्रभु की आराधना को ही परम साधन मानने वाली स्त्रियाँ जड़ चेतन के नियन्ता, संसार के कर्ता, तीनों लोकों का भरणपोषण करने वाले भक्त जनों के कष्ट संहारक और खूँखार दुष्ट दानवों को मारने वाले, परमात्मा को भी इस भूतल पर अपने उदर में धारण करने की सामर्थ्य वाली होती है । आप जैसी देवियों की गोद में ही नित्य साकेत निवासी खेला करते हैं और ललित लीलाओं के माध्यम से विहार करने की कामना करते हैं ।

श्रीसुशीला जी भगवान् के वरदानस्वरूप अपने पति के मुख से अत्यन्त आनन्द को देने वाली वाणी को सुनकर, अचानक अमृत की वर्षा मानती हुई परमानन्द में निमग्न हो, संसार को भूल गयी । परिवार से रहित

ब्रह्मानन्द में विचरण करने वाली योगिनी की तरह समाधिस्थ मौनी हो गयी। नेत्र बन्द करके भगवान् के अवतार का ही चिन्तन करती हुई, सुन्दर स्वभाववाली श्रीसुशीला क्षण भर के लिए परमानन्द कन्द में तल्लीन हो गई ध्यान मग्न हो गयी।

और विचार करने लगी-क्या भगवान् की प्रेरणा से साक्षात् भगवान् से ही कही हुई यह वाणी सत्य ही होगी क्योंकि आज तक पतिदेव के मुख से हास विलास अथवा भगवत् अर्चा के समय में भी इस प्रकार कमनीय परम रमणीय अत्यन्त आह्लादक मेरे मन को उन्मादित करने वाली वाणी नहीं सुनी। मुझे प्रतीत होता है कि श्रीसीतानाथ प्रभु परम सौभाग्यशालिनी श्रीकौसल्या देवी एवं अनसूयादि के समान अपनी भक्ति से अंगीकार करके माता की पदवी देकर सम्पूर्ण बालस्वरूप में प्रकट हो करके अपनी समस्त सेवाओं को करने वाली बनायेंगे। भगवान् को अपनी गोद में लेकर दुलारती हुई मैं अपनी मनोरथरूपी कल्पलता को सफल करूँगी।

मधुराति मधुर उनकी तोतली वाणी को सुनूँगी और उनके मुख कमल से निकली हुई कमलकेशर की सी सुगन्धित वायु को सुघूँगी। छोटे-छोटे दांतों से युक्त मुखचन्द्र को बारम्बार अतृप्तनेत्रों से देखकर पुनः पुनः चुम्बन के आनन्द को प्राप्त कर अपने को कृतकृत्य मानूँगी। हमारे प्रभु परम दयालु और भक्तवत्सल हैं उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जो जिस भाव से मेरी शरण में आता है मैं भी उनको उसी भाव से भजता हूँ। यदि उन्होंने कहा है तो अवश्य ही मेरे मनोरथों को पूर्ण करेंगे। वे ही अपने भक्तों के अनुरूप दृढ़ भक्ति भावना एवं अपने चरण कमलों में उस प्रकार की सुदृढ़ अनुरक्ति और व्यसन उत्पन्न करेंगे जिसे वे शीघ्रातिशीघ्र प्रसन्न होकर स्वयं उसी प्रकार की लीलाओं को प्रकट करने और मेरी गोद में खेलने के लिए अवतार लेंगे। मेरा यह सुदृढ़ विश्वास है कि अघटित घटना के रचने में चतुर वे स्वयं ही अपने लीलामंच को बना लेंगे क्योंकि वे करने न करने, अन्यथा करने में सर्वथा समर्थ हैं अतः शंका करने का अवसर ही नहीं है अविश्वास से दृढ़ता की हानि होती है सभी प्रकार से समर्पित भक्त के लिए अनन्त करुणा सागर में किञ्चिन्मात्र भी निराशा का स्थान कहाँ है। वे तो जलाभावयुक्त उद्यान को विविध मनोहर कल्पवृक्षों से युक्त कर देते हैं इसी प्रकार अकाल के समय भी कृषक जनों के मनोरथ को पूरा करने वाली

अनन्त मेघमालाओं को प्रकट कर देते हैं । भयंकर सूर्य की गर्मी से मुरझाई हुई चमेली की बेल को, अनुपम पुष्पों के आने से परम मञ्जुल भँवरों के मन को हरण करने वाली, मदनमोहिनी, मनुष्यों के मन को उन्मादित करने वाली रसिक युवक युवति समूहों के विहार हेतु अतिरमणीय भ्रमर समुदाय के गुञ्जनरूपी गुण से गौरवान्वित कर देते हैं इसी प्रकार बहुत शीघ्र मेरे प्रभु मुझे भी सौभाग्यशालिनी बनायेंगे । इस प्रकार विविध विचारधाराओं में बही जाती हुई सी एक स्थल पर कहीं स्थित न होती जैसी सुशीला को देखकर श्रीपुण्यसदन जी सहसा उनका स्पर्श करके समाधि में लगी जैसी स्थिति से उनको विशेष हँसी मजाक की स्थिति में लाने के उद्देश्य से बोले-

प्रिये! समाधिलीन, बाह्येन्द्रियों से विरत देवी की भाँति अकेले ही मौन धारण कर आनन्दातिशय का अनुभव करती हुयी तुम ऐसी प्रतीत होती है, जैसे तुम पूर्ण काम हो गई हो तुम्हारा मनोरथ जैसे पूरा हो गया हो । हमें भी अपने आनन्द सिन्धु की कुछ बूँदें देकर तृप्त कर दो -

कुछ लज्जित होते हुये सुशीला ने कहा-देव ! क्या निवेदन करूँ- यह तो नारियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है-कि हर्ष का अवसर आने के पहले ही हजारों मनोरथों से उनके हृदय भर जाते हैं, और वे अपने अनुकूल विविध आनन्दों की परिकल्पना कर लिया करती हैं और उनका हृदय कल्पना रूपी कल्पवृक्षों की शोभा से युक्त, भावनाओं के अनुकूल विविध नन्दन कानन में विहार करता रहता है जहाँ पर भक्त की चिन्ता को छिन्न-भिन्न करने वाले श्रीरघुनन्दन अपने वैभव का अकल्पनीय माहात्म्य फैलाकर हमेशा अनन्त आनन्द के एकमात्र लीला विग्रह से अवतार लेकर विहार करते हैं किन्तु इस समय मेरी भावनामयी सुखद वेला को सुनकर आप हसेंगे अतः उनको प्रक: करने में असमर्थ कहने में लज्जित हो रही है ।

इस प्रकार श्रीसुशीला के सुविचार को सुनकर उन्हें आगे सुनने की उत्कँट अभिलाषा उत्पन्न हो गई और अपनी प्रियतमा के भावों को उनके संकेत से जानकर भी उनके उद्गार को सुनने की इच्छा से अपनी भामिनी को वर्णन करने के लिए विवश कर दिया ।

श्रीसुशीला जी भी अपने हृदय में प्रकट हर्षातिरेक को रोककर लज्जा के वश में होने पर भी शीलविनय में पिरोयी हुई अपनी आशारूपी

जल से सिंचित सहस्त्रों शाखा प्रशाखाओं से युक्त श्रीजानकीनाथ की करुणा के अधीन अपने मनोरथ रूपी पौधे को सफल हुए के समान मानती हुई कहने लगी ।

देव ! अचानक ही आपके मुख से निर्गत सुधा एवं संजीवनी के समान यह वाणी–"आप जैसी ही सद्बुद्धि सम्पन्न अदिति एवं कौशिल्या के समान नारियाँ क्षीरसागरशायी दयासागर भगवान को अपने गर्भ में धारण करने की क्षमता रखती है" सुनकर लौकिक व्यवहारों को भूलकर कल्पना सागर में निमग्न होती हुई सी मैने सोचा–क्या ये वाक्य पतिदेव ने कहे हैं ? अथवा निटसीम करुणा वरुणालय लोकाभिराम श्रीराम ने ही ऐसा वरदान प्रकट किया है ? इस प्रकार विचाररूपी उपवन में विहार करती हुई वास्तविक पुत्र को गोद में लिये हुए के समान ध्यानानन्द में निमग्न हो गयी सती के समान उस समय किसी और को अपने पास नहीं देखा । इस प्रकार प्रसन्न मुख वाली अपने सामने हँसते हुए पति को देखकर अपने नेत्रों से अपने भावों को प्रक: करती हुई बोली कि प्राय: अचिन्त्य मनोरथ वाले सभी लोगों के भाव इसी प्रकार के होते हैं जो कि समय-समय पर सुने गये, वैसे होने वाले भावों में उनके मन में शीघ्रातिशीघ्र राजहंस जैसे मनोरथ कौतुहल वाले होते हैं अत: यह कोई आश्चर्य नहीं । प्राय: कामिनियों की कामनायुक्त होने पर ऐसी ही स्थिति होती है यह सुनकर–

हँसते हुए श्रीपुण्यसदन जी बोले, हे प्रिये ! यह सत्य है शास्त्रों में भी वर्णित है कि मनुष्यों के गतस्वरूपों और भावीस्वरूपों को मन बता देता है ।

अत: मुझे यह निश्चय हो रहा है कि अब अपारकृपा के आगार श्री रामचन्द्रजी अपनी उदारता, भक्त वत्सलता एवं कृपा के अमृत की वृष्टि करते हुये शीघ्र ही वरदायक बनकर हम पर कृपा करेंगे । शतशत मनोरथों की कल्पना जो तुम्हारे भीतर उठ रही है यह उसकी पूर्व सूचना है। क्योंकि इसके पहले कभी भी तुमने ऐसी परिकल्पना नहीं की है । देवि - भगवदनुग्रह भाजनों के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है । क्षणमात्र में जिनके भृकुटि विलास से उद्‌भव पालन एवं संहार का कौतुक उपस्थित हो जाया करता है - उनके लिये क्या असंभव है ? यह मेरा दृढ़ विश्वास है । वही भक्ताधीन प्रभु हमारे चिर अभिलषित मनोरथों की पूर्ति करेंगे ।

पतिदेव की इस मधुराति मधुर वाणी को सुनकर उसकी भावना का कमल प्रफुल्लित हो उठा । उसने कहा - अब हमको क्या करना चाहिये, जिससे शीघ्र ही मानस मनोरथ का कल्पवृक्ष पुष्पित हो उठे और अपनी सुखद सुरभि से सब को संतृप्त कर दे ।

प्रिया की प्रिय वाणी को सुनकर प्रिया की प्रियता के लिये प्रसन्न वदन पुण्यसदन ने कहा भक्ति प्रिय श्री साकेताधिपति श्री रामचन्द्र जी की ही सब प्रकार से उपासना करो । क्योंकि वे कहते हैं "मैं एक मात्र भक्ति के द्वारा ही पकड़ में आ सकता हूँ" इसको लक्ष्य कर "सब कुछ छोड़कर भगवद् भजन करना चाहिये इन वाक्यों को हम लोगों को अनुस्मरण करना चाहिये । वही प्रभु हमारी कामनाओं को पूर्ण करेंगे । उनका कथन है "जो लोग मुझे जिस भाव से भजते हैं उसी भाव से मैं भी उनकी सहायता किया करता हूँ" ऐसा कहकर पुण्यसदन ने पत्नी सुशीला का भाव जानने के लिये अपनी वाणी को विराम दे दिया ।

उसने भी अपने प्रियतम के अभीष्ट को उनके इशारे से जानकर अपने अभीष्ट के अनुरूप वचन सुनकर तत्काल पत्नी सुशीला ने कहा - देव ! शुभ कार्य शीघ्र ही सम्पन्न करने चाहिये । अत: नियमानुसार अब हमें विलम्ब करना उचित नहीं है । कल्याणकारी कार्यों में बहुत से विघ्न आ जाया करते हैं अत: विलम्ब नहीं होना चाहिये ।

यदि घर में किसी प्रकार के विघ्न बाधा की आशंका हो तो यहाँ से दूर कहीं गंगा जी के पावन तट पर कुटी बनाकर वही शान्त एकान्त स्थान में यम नियम पूर्वक भगवत् समाराधना करनी चाहिये ।

इस प्रकार अपनी ही प्रवृत्ति का पोषण करने वाली सुशीला के इन वाक्यों को सुनकर प्रसन्न मुख पुण्यसदन पत्नी का समर्थन प्राप्त कर शीघ्र ही वे सपत्नीक पहले से दुगुने विधि विधान पूर्वक श्रीसाकेताधिपति की सेवा में संलग्न हो गए ।

तीसरा परिच्छेद

इस जगत् में जो निर्लिप्त भाव से रहते हुये स्ववर्णाश्रमानुसार स्वधर्म पालन करते हुये अकारण सुहृद श्री साकेताधिपति की शरणागति स्वीकार करके निष्काम भाव से उनका सेवन करते हैं, उन्हीं के विमल मानस में राजहंस बनकर प्रभु विहार किया करते हैं, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है ।

ऐसा सुनिश्चित कर सभी लोगों के मन के सन्ताप को हरने वाली, हर तरह की सम्पत्ति को देने वाली जैसे वृक्ष के मूल में जल देने से उसके सभी शाखाओं प्रशाखाओं का सींचन हो जाता है उसी प्रकार भगवान् की सेवा से सभी देवताओं की सेवा हो जाती है अत: ऐसे सभी देवताओं से परिसेवित भगवान् की सेवा का सत्संकल्प लेकर श्रीपुण्यसदनजी अपना धाम छोड़कर पत्नी के साथ गंगातट पर पहुँच कर एक पर्णशाला का निर्माण किया और उदार हृदय होकर तुरन्त सेवकों को लेकर भगवदाराधना में तल्लीन हो गये ।

समस्त सेवा सामग्री के संकलन में निपुण परिचारकों के होते हुये भी वे दम्पति स्वयं ही अपने हाथों से सम्पूर्ण भगवत् सेवा सामग्री को एकत्र करते थे । प्रतिदिन दोनों प्रात: ब्रह्म मुहूर्त में जागकर प्रात: कालीन दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर देवापगा को श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर स्नान करते, और भगवत् सेवार्थ अपने-अपने कंधों पर कलशों में गंगाजल लाकर अपनी कुटी को संस्कारित करते । पात्रों का मार्जन करने के बाद नियमित जप होम, स्तोत्र पाठ, गन्धाक्षत पुष्प, धूप दीप, नैवेद्य, ताम्बूलादि समाहारों से त्रैलोक्याधिपति श्री रघुनाथ जी का पूजन सम्पन्न कर नित्य नियम के अनुसार ध्यान धारणादि के विधान में संलग्न रहते थे ।

इस प्रकार कभी मात्र दिन में एक बार ही आहार करते । कुछ दिनों तक मात्र दुग्ध पान कर, कुछ दिनों तक फलाहार पर, कुछ दिनों तक मात्र पर्ण (पत्ते) खाकर तथा कुछ काल तक गंगा जल लेकर और कुछ समय तक मात्र भगवच्चरणामृत का आचमन करके ही प्राण धारण कर रहे थे । दृढ़ अनुराग के कारण भगवदासक्ति योग तथा ध्यान योग सिद्ध हो जाने पर

उन्होंने निरन्तर प्रभु से तादात्म्य स्थापित कर लिया । दम्पति पर भगवदनुग्रह हुआ । एक दिन प्रातः जब दोनों समाराधन हेतु जगे, तब सहसा भक्त कल्पद्रुम करुणासागर श्रीराघवेन्द्र के श्रीविग्रह का वरदान प्रदान करने की मुद्रा में दर्शन का परम सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ ।

अचानक उदित भास्कर के दिव्य तेज के अवलोकन में प्रतिहत नेत्र हो जाने पर श्री विग्रह के दर्शन में असमर्थ चर्म चक्षुओं में प्रभु ने अलौकिक दिव्य दर्शन की शक्ति अवतरित कर दी, और वे अपने तप के फलस्वरूप स्व इष्टदेव के दर्शन से कृतकृत्य हो उठे । किं कर्तव्य विमूढ़ की भाँति मात्र भगवत् मुख कमल का दर्शन अपलक नेत्रों से करते रहे । स्तुति या प्रार्थना के लिये वाणी प्रस्फुरित नहीं हो सकी । ऐसी स्थिति में दम्पति को देखकर करुणावरुणालय प्रभु ने स्वयं ही अपनी अमृत वर्षिणी श्रवण मंगल, आनन्ददायिनी वाणी से कहा ।

मैं अतीव प्रसन्न हूँ मन, वाणी और कर्म का पूर्ण समर्पण करने वाले समस्त लौकिक सुखों का परित्याग कर देने वाले तथा अविचल श्रद्धा भक्ति सम्पन्न तुम दोनों के दृढानुराग से आकृष्ट होकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ । अब आप लोगों के मनोरथ सिद्ध होगें । तपस्या रूपी श्रम अधिक मत करो, समस्त कामनाओं को पूरा करने वाले मेरे आने के बाद मनुष्यों की कोई इच्छित कामना शेष नहीं रहती है हे देवि ! आपकी विशुद्ध महान् अनुरागपूर्ण रसिक भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ शीघ्र आपकी अपेक्षितकामना को पूर्ण करूँगा, आपकी शुभ गोदी को सुशोभित करूँगा अलौकिक सौभाग्य सम्पत्ति वाली, नई नई अनुपम आनन्द को देने वाली विविध बाललीला करूँगा आपकी गोदी रूपी रंग स्थली का सहारा लेकर, युवति जनों के मन को हरण करने वाली अन्य सामान्य माताओं के लिए दुर्लभ श्री कौसल्या जी की गोदी में की गयी लीलाओं को पुनः करूँगा ।

भगवन् ! पुण्यसदन ! वस्तुतः आप पुण्य निवास हैं । जो निरन्तर श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वन्दनादि विधानों से सभी कर्मों का समर्पण कर दास्य भक्ति अपनाकर तुम पूर्व जन्म में मेरे मित्र रह चुके हो । किन्तु अब तुम्हें विस्मृति हो गई है अतः पुनः स्मरण दिलाने के लिये ही मैं तुम्हारे समक्ष प्रकट हुआ हूँ । इस अपने पूर्व सखा को पहिचानो । उस लीला रसिक की याद करो, जिसके साथ बचपन में घर छोड़कर वन में

रहते हुये, सूखे पके, कच्चे, स्वादिष्ट एवं स्वादरहित फल खाते हुये मंत्रतंत्र ज्ञान न होते हुये भी स्वेच्छा से जैसा लोगों से सुना था । वैसा ही राम नाम का जप करते हुये पूरे दिन एकान्त में खेलते हुये कभी रोते, कभी हँसते कभी गाते हुये जंगल में घूमा करते थे । तब मैं करुणार्द्ध होकर तुम्हारे साथ बाल लीला करता हुआ प्रतिदिन खेला करता था । जब मैं एक बार तुम्हें अकेले छोड़कर जाने लगा था तब तुम जोर जोर से रोने लगे थे । और मुझसे प्रार्थना की थी कि मुझे भी अपने साथ लेते चलो । उस समय मैंने तुमको वरदान दिया था कि अगले जन्म में अपनी बालक्रीड़ा से मैं तुम्हारा मनोरंजन करूँगा । आज वह वरदान देने वाला तुम्हारे समक्ष उपस्थित हैं । तुम मेरे उस समय के मनसुख नामक मित्र हो । अब तुम्हारी नवधा भक्ति सिद्ध हो गई हे । मैं तुम्हारे भवन को अलंकृत करने के लिये सुशीला के गर्भ में प्रकट होकर तुम्हारा मनः संताप दूर करूँगा । भारत में बढ़ रहे अत्याचारों को तथा गोब्राह्मणों के विनाशकों को नष्ट करूँगा । दुष्टों के द्वारा विनष्ट की गई सदाचार परम्परा का संस्थापन करूँगा, तथा हिंसा, स्वेच्छाचार, द्रोह, ईर्ष्या, पाखण्ड आदि जो भारतीय संस्कृति के विघातक हैं उन्हें जड़ से उखाड़ फेकूँगा ।

तुम्हारे पुत्र के रूप में मैं राम भक्ति की महिमा सर्वत्र प्रसार करूँगा । अतः अब तुम पहले जिस प्रकार अपने भवन में रहकर स्वधर्मानुष्ठान परम्परा का पालन कर रहे थे उसी प्रकार पुनः घर वापस जाकर आनन्द पूर्वक सभी कृत्य करो । तुम्हें शीघ्र ही मेरा साक्षात्कार होगा । इस वृत्तान्त को अत्यन्त गोपनीय रखना । सुखपूर्वक घर जाओ । इस प्रकार अर्धरात्रि में घनान्धकार में बादलों की घटा से आच्छन्न आकाश में चन्द्रमा की तरह प्रकाशित होकर इस प्रकार आश्वासन और वरदान देकर शीघ्र अन्तर्धान हो गये ।

वे दोनों दम्पति उठकर अपने आसन में बैठकर मौन रहकर केवल एक-दूसरे का मुख देखते रहे । कुछ देर बाद पुण्यसदन बोले-देवि ! सुना देखा, समझा, अनुभव किया । कुछ विचित्र अद्भूत आलाप था । प्रिय के मुखारबिन्द को प्रसन्न देखकर हर्षातिरेक एवं आश्चर्य प्रकट करती हुई सुशीला ने कहा-

देव ! जो कुछ घटित हुआ, जो कुछ सुना देखा वह स्वप्न तो हो ही नहीं सकता । क्योंकि हम दोनों सावधान थे । बैठे थे । प्रत्यक्ष दिखाई

पड़ा, कि हमारी कुटी प्रकाश से भर गई थी । यही सामने आपके दाहिनी ओर इसी पूजा पीठ में विराजमान श्रीचरणों ने पर्याप्त समय तक बातचीत की । पहले मुझसे और बाद में आपसे । स्पष्ट रूप से वरदान भी दिया, वह भी हम दोनों ने सुना । प्रकट होने के बाद जो कार्य उन्हें करने है, प्रभु चरणों ने उन्हें भी स्पष्ट किया । आपके पूर्व जन्म का वृत्तान्त भी बताया । भला यह सब मिथ्या कैसे हो सकता है ? यह हमारे आराध्यदेव की स्पष्ट अनुकम्पा है । इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है जैसा उनका हमारे लिये आदेश है उसका पालन करना चाहिये । पुण्य सदन ने कहा देवि ! सत्य है सत्य है यह ध्रुव सत्य है कि हमारी प्रार्थना को देवाधि देव ने स्वीकार कर लिया है और अपने अवतार के प्रयोजन को भी निर्देशित कर दिया है हम कृतार्थ हो गये । अतः अपने घर चलकर भगवान् के प्राकट्य के अनुरूप अपने भवन को संस्कारित करें, अब हमें पहले से भी अधिक दान धर्मादिक कृत्य करना चाहिए । ऐसा निश्चय करके सहर्ष वे दोनों अपने भवन में आ गये ।

चौथा परिच्छेद

श्री पुण्यसदन जी सुन्दर, शीलवाली अपनी धर्मपत्नी श्री सुशीला जी के साथ, श्री जानकीवल्लभ जी की चरण सेवा में रत प्रतिदिन श्रवण-स्मरण कीर्तन, मनन करने में संलग्न रहते, सांसारिक लेन-देन रूपी जटिल लौकिक व्यवहार से अलग रहते । अपने विशाल पारिवारिक जनों के पालन-पोषण हेतु गृहस्थी संबंधी उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी, निरन्तर श्रीमत् भगवत् चरणारविन्दों के मकरन्द के आस्वादन में निमग्न रहते और दीन-जनों की दीनता को दूर करने के लिये निरन्तर दृढ़ प्रतिज्ञ थे । भूखमरी रूपी पिशाचिनी के पैरों से कुचली जाती हुई ब्राह्मण कुल की अध्ययन-अध्यापन परम्परा की रूकी हुई प्रगति के उद्धार के लिये कटिबद्ध पुण्यसदन जी-श्री साकेत बिहारी जी के श्रृंगार के लिये नाना प्रकार की भावना से युक्त सदैव झूमते रहते, याचकों को उनकी इच्छानुसार कुर्ता-धोती, दुपट्टा आदि देते और स्वयं दुपट्टा धारण करते । निरन्तर आने वाले अतिथि अभ्यागतों के खाने-पीने, रहने की व्यवस्था करते, नागरिक जनों का यथा योग्य, मान-सम्मान, दान आदि द्वारा आबालवृद्ध को सन्तुष्ट रखते ।

इस प्रकार इन्द्रभवन के समान अपने भवन में प्रसन्न मुख वाले पुण्यसदन जनता जनार्दन की सेवा के साथ, श्री जानकीनाथ की उपासना, वासना से रहित होकर करते थे । श्री पुण्यसदन जी का सम्पूर्ण समय भगवत् कथा, सन्त महात्मा विद्वानों के सत्संग और विविध शास्त्रीय चर्चा में सानन्द व्यतीत होता था । स्वयं सांसारिक व्यवहार से युक्त होते हुए भी विरक्त जैसे, परिजनों से लिप्त होते हुए निर्लिप्त के जैसे, सकाम कर्म के समान निष्काम निष्ठा भक्ति से सभी कर्म भगवत् सेवार्थ करते हुए पत्नी के साथ सानन्द निवास करते थे ।

सुन्दर स्वभाव वाली सुशीला भी समय-समय पर जैसे अदिति जी द्वारा कश्यप की, कौशल्या जी के द्वारा दशरथ के समान, नाना प्रकार से धर्म-अर्थ का सेवन करती हुई भी सर्वत्र सभी समय साकेताधिपति कौशल्या हृदयानन्दवर्धन लोकाभिराम श्री राम का ध्यान करती हुई प्रेमालाप के द्वारा

एक मात्र अपने प्रियतम सर्वगुण सम्पन्न श्री पुण्यसदन की सेवा करती हुई, आनन्द उल्लास के साथ भावगम्य भगवान को प्रत्यक्ष प्राप्त करने के समान, गर्भ में धारण करने के लिये सेवा करती । पुण्यसदन ने भी सेवा कर निरन्तर भक्ति ध्यान योग से प्राप्त भगवद्भाव से सतत श्रवणमनन आदि के द्वारा हृदय देश में विराजमान भगवान श्री सीतानाथ का ध्यान करते हुए अंशाश से मन में प्रविष्ट के समान उन्हीं का स्मरण करते हुये दाम्पत्य व्यवहार का आचरण करते हुये, कश्यप के द्वारा अदिति के समान बहुकालिक एकत्रित तप से युक्त तेज को सुशीला जी में आरोपित किया, तब से श्री सुशीला जी निरन्तर प्रसन्नचित्त, शास्त्र आज्ञानुसार तथा स्वकुलीय वृद्धाओं की आज्ञानुसार अपने गर्भ की रक्षा की चेष्टा में लगी रहती ।

इस प्रकार धीरे-धीरे कुछ दिनों के व्यतीत हो जाने पर बढ़ते हुए पुण्य के क्रम के साथ, विशिष्ट चरित्रवाली श्री सुशीला जी के गर्भ वृद्धि के साथ, शील स्वभाव दया और सुखदायी क्रिया आदि गुणों की अभिवृद्धि होने लगी तथा गृहकार्यों में शिथिलता की, गौ ब्राह्मण अतिथि आदि की सेवा में उत्साह, भगवत्भक्ति में दृढ़ता, श्रीमद्राम चरित्र आदि के सुनने में अनुराग की प्रतिक्षण वृद्धि प्रारम्भ हो गयी ।

इस प्रकार सगर्भा के समान इनका मुखमण्डल, पाण्डुरत्व से विकसित हो गया, तत्क्षण उत्पन्न दुग्ध से भरे मांगलिक कलश के समान जिनमें मोटापा आ गया है, ऐसे स्तन मण्डल को देखकर लज्जित होती थी, इसी प्रकार उदर व कटि के भाग के विस्तार से वाणी में शिथिलता व मधुरता आदि गुरुता के कारण मन्थर गति के पादविन्यास से हंस की गति का मान मर्दन करने वाला महोल्लास बढ़ता जाता था ।

अपने प्रियतम के हास्य से युक्त मुख मण्डल दर्शन के समय जो पवित्र मन्थरपन से जन्य लज्जा थी वह एकाएक समाप्त हो गयी और ज्यों-ज्यों नेत्र बंद करके ध्यान बढ़ता था वैसे-वैसे उनके मुख मण्डल पर परम शान्त भास्वर ज्योति छा जाती थी और उनका मुखमण्डल प्रभात कालिक पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान सुशोभित होता था ।

इस प्रकार नवम महीने के समाप्ति काल में, वे प्रातः कालिक स्वप्न देखती हैं । एक बार अरुणोदय काल की उपस्थिति से पूर्व ब्रह्म मूहर्त के

आरम्भ काल में देखा, कि कोई अद्वितीय परम तेजस्वी, जिसके चारों तरफ तेज फैला है । ऐसा परम मनोहर बालक नाना प्रकार के खिलौनों के साथ मेरी अंगनाई में खेल रहा है । उसी प्रकार सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित देव वधुओं के समान बहुत सारी स्त्रियाँ हर्षोल्लास, विनोद से युक्त चारों तरफ से घेर कर, एक दूसरी से गोद में लेकर, कभी हृदय से लगाकर, कभी अपने गोद में छिपाकर कभी उछाल कर, पुनः हाथों में छुपाकर, बार-बार चूमती लालन करती खेल रहीं हैं ।

पुनः कोई उस बालक को सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित शीतल जल से स्नान कराकर चन्दन, केसर आदि का लेपकर दिव्य सुगन्ध युक्त बनाकर अद्वितीय रत्नजड़ित भव्य सिंहासन पर स्थापित कर उनके विशाल मस्तक पर तिलक लगाकर नाना प्रकार की पूजन सामग्री से पूजा करती और शिशु के मनोरंजन के लिये देवाधिदेव महादेव श्री शंकरजी विचित्र वेशभूषा से युक्त अपना डमरु बजाकर कोटि कन्दर्प कमनीय शिशु को आह्लादित करते हैं । इन्द्र के सहित अन्य देवतागण स्तुति करते हुए नन्दन वन के पुष्पों से पुष्पांजलि देते हुए पुष्पों की वर्षा करते हैं । विश्व की विशिष्ट विभूतियाँ विश्वावसु आदि उनके गुणों का गान करते हैं । देवलोक की रमणियाँ मेनका, तिलोत्तमा, घृताची, रम्भा, उर्वशी, सुकेशी आदि प्रियतम को प्रसन्न करने वाले हाव भावों को दर्शाती हुई नाच रही है । तीनों लोक की वन्दनीया श्री लक्ष्मी, उमा, सरस्वतीं इन्द्राणी आदि संसार की विभूतियाँ लाड़ करती है और सिर चूम कर दृष्टि दोष (नजर उतारने) को दूर करने के लिये राईलोन उतारती है । आकाश मण्डल में चारों तरफ जय-जय की ध्वनि फैल रही है । पुनः उसी समय वह बालक नवयुवक होकर दण्ड कमण्डल मेखला से युक्त यज्ञोपवीत को धारण किये, मधुर स्निग्ध भाव से देखता हुआ ऊँची चौकी पर बैठ सुन्दर शिष्य मण्डली को उपदेश करते हुए सुशोभित हो रहा है । विद्वान् जन उनकी महिमा से उनके पीछे चल रहे हैं । इस प्रकार परिभ्रमण करते हुए श्रीराम भक्ति का राष्ट्र में प्रचार कर रहे हैं । पृथ्वी पर जगह-जगह विजयस्तम्भ स्थापित कर रहे हैं और सुशीला जी की भी उस वचनामृत झरने के पान से समस्त इन्द्रियां तृप्त हो रही हैं जिसके सामने लौकिक और पारलौकिक सुखों की परवाह नहीं कर रही हैं । और अधिक आनन्द की प्राप्ति की इच्छा से उनके पास जाना चाह रही है । इसी बीच प्रातःकालिक

भेरी नाद को सुनकर जाग गईं और स्वप्न भी उसी समय समाप्त हो गया । इसके बाद स्वप्न जन्य आनन्द के अपूर्व आनन्द महोदधि की उत्ताल तरंगों में ऐसी निमग्न हो गयी कि जो, नित्य ब्राह्म मूहूर्त में उठकर नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर अरुणोदय बेला में प्रतिदिन भगवद्द् दर्शन स्तोत्र पाठादि करती थी । किन्तु आज कब वह समय निकल गया यह जान नहीं सकी । इस समय प्रभात हो जाने पर भी गर्भभार से युक्त परम प्रसन्न श्री सुशीला जी को देखने की इच्छा वाले श्री पुण्यसदन जो सुख से सोई है, ऐसे जानकर नहीं जगाते थे ।

जब पुण्यसदन अपने प्रातः कालीन कृत्यों को समाप्त कर कक्ष के बाहर निकले, तो उन्होंने देखा-अत्यधिक तेजस्वी सुन्दर वेष वाले चार ब्राह्मण अपनी-अपनी शाखा के अनुरूप वेद पाठ कर रहे थे । देखकर सोचा-क्या ये सनक, सनन्दन-सनातन और सनत् कुमार ही हैं-नहीं-वे तो पंचवर्षीय एवं दिगम्बर है-ऐसा सोचकर जब वे उनके पास आये तो वेद-मंत्रों का पाठ करते हुये उन्होंने आर्शीवाद दिया और जय की घोषणा की । महाभाग सुकृत सदन पुण्य सदन की जय हो ।

इनको आशीर्वाद की परम्परा से जब तक वे अभिनन्दन कर रहे थे तब तक श्री पुण्यसदन जी अपने पूजा घर से बाहर आकर उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम करके सम्मान पूर्वक अपने उपासना गृह में ले जाकर, ऊँचे आसन पर सुख पूर्वक बिठाकर, मधुपर्क आदि के नियम से पूजा कर, कुशल प्रसन्न पूर्वक सविनय अपने घर तक आने का कारण पूछा ।

वे भी अपने को छुपाकर केवल भूत-भविष्य वेत्ता ज्योतिषी के रूप में अपना परिचय दिये और बोले आपकी चारों तरफ फैली मञ्जुल कीर्ति को सुनकर भविष्य फल बताने की इच्छा से हम लोग यहाँ उपस्थित हुये हैं । आज्ञा हो तो निवेदन करूँ ।

हाथ जोड़कर श्री पुण्यसदन बोले- सेवक सावधानी पूर्वक सुनने के लिये तैयार है । आप जैसे दयालुओं के द्वारा अनुगृहीत होने पर क्या पूछना ! यह सेवक तो आपके चरणारविन्दों का भ्रमर स्वरूप है, आप की कुछ भी सेवा नहीं कर सकता ।

कल्याण हो 'ऐसा कहकर उन्होंने कहा महानुभाव ! जैसा तुम्हारा नाम है वैसे ही तुम गुणों के भण्डार भी हो । तुम्हारे तप से तुष्ट होकर स्वयं

श्री हरि पुत्र के रूप में आपके यहाँ जन्म लेंगे । वह पुत्र जगत् में विख्यात-महान तेजस्वी, महान ब्रह्मज्ञानी योगिराज, अपार करुणासागर मनुज उद्धार परायण एवं आर्य संस्कृति का समुद्धारक होगा । वैदिक धर्म विरोधियों तथा पाखंडियों को पराजित करेगा और जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित होगा ।

महानुभाव ! जैसे इस समय इस लोक में आप ही महा महिमाशाली है किन्तु आप से भी अधिक भाग्यशाली आपकी धर्म पत्नी श्री सुशीला देवी है हम लोग तो ऐसा मानते हैं कि बड़े-बड़े योगीजन ध्यान धारणा समाधि के द्वारा जिनके दर्शन की चेष्टा करते हैं तथा तप योगादि के साधनों के द्वारा सतत जिनको प्राप्त नहीं कर पाते अधिक क्या कहूँ । ब्रह्मा इन्द्र रुद्र आदि जिनके अंग संग के सुख की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं । वही साक्षात् पर ब्रह्म भगवान् साकेताधिपति श्रीराम साक्षात् आप दोनों के नेत्रों के समक्ष प्रकट हो गये और निज प्रसाद स्वरूप अपूर्व वरदान के द्वारा आप लोगों को कृतार्थ किया यह लग्नवेला बता रही है कि अविलम्ब ही वही जगद्वन्द्य कौशिल्या नन्दन भगवान् श्रीसुशीला की गोद को ही रंगभूमि बनाकर अपनी बाललीला का प्रसार करेंगे जगत् के कल्याण का विस्तार करेंगे । म्लेच्छों के आक्रमण एवं अत्याचार से संसार को मुक्त करायेंगे । शान्ति की स्थापना करेंगे अशान्ति के वातावरण को दूर करेंगे । जन-जन के मन में बल, साहस, शौर्य एवं सद्भावना की वृद्धि करते हुये गो ब्राह्मणादि के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान को प्रतिष्ठित करेंगे । कल्याण हो-कल्याण हो-ऐसा कहकर वेद-मंत्रों से पुनः पुण्य सदन को आशीर्वाद दिया ।

इस प्रकार उनके विनय सहित कथित आशीर्वचनों को सुनकर श्रीपुण्यसदन जी उनके स्वरूप के अनुरूप पूजा हेतु वस्त्रालंकार लेने के लिये घर के अन्दर प्रविष्ट हुए, उसी क्षण वे महापुरुष अन्तर्ध्यान हो गये ।

श्री पुण्यसदन जी अपने हाथों में पूजन सामग्री लेकर लौटे तो उन चारों ब्राह्मणों को न देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गये और उन्हें बहुत खेद हुआ कि वे सुन्दर दर्शन वाले महात्मा मुझसे बात करके कहाँ चले गये? उसी समय आकाशवाणी हुई, हे सुकृत सदन पुण्यसदन ! हम लोग दान दक्षिणा की इच्छा वाले सामान्य वेदविद् ब्राह्मण नहीं है, अपितु तुम्हारे दर्शनों के लिये आये हुये तुम्हारे आँगन में ऋग, यजु, साम अथर्व'' चारों वेदों को ही जानो ।

हम तो गर्भस्थ आपके पुत्र का स्तवन, कीर्तन, स्वस्ति वाचन करने आये थे। यह जानकर आप चिन्ता एवं विषाद के वशीभूत न होवे।

उसी समय सुशीला देवी आकर, चरणों में वन्दन पूर्वक अपने हृदय को आनन्द देने वाले स्वप्न के वृतान्त को बताने के लिये उपस्थित हुई, किन्तु विस्मित मन वाले हर्ष विषाद से आश्चर्य चकित अद्‌भुत मुखाकृति से युक्त अपने प्राणवल्लभ के मोद-उल्लास से प्रसन्न अन्तरात्मा को देख, कारण जानने की इच्छा से पूछी, "हे देव आप नाना प्रकार की भावनाओं से युक्त आश्चर्य चकित कैसे दिखाई दे रहे हैं ? इति।

सुन्दर स्वभाव वाली विशिष्ट सहचरी अन्तर्निहित विशेष तेज से युक्त श्री सुशीला जी को सम्मान पूर्वक पास में बिठाकर श्री पुण्यसदन ब्राह्मण रूप में आये चारों वेदों के आने जाने के वृतान्त का वर्णन करने लगे। यह सुनकर श्री सुशीला ने भी आनन्दित हो स्वप्न में अनुभूत वृतान्त को सानन्द सुना दिया। दोनों शुभ लक्षण से युक्त, एक लक्ष्य वाले, मनोरथ को पूरा करने वाले शुभ दृश्यों का विचार कर, अपने इच्छित अग्रिम कर्त्तव्यों के बारे में श्री सुशीला जी ने अपने पतिदेव के समीप निवेदन किया।

सुशीला ने कहा-देव ! अब अपने मनोरथ पादप के पुष्पित होने का समय आ गया है अतः अब भगवान की प्रसन्नता के लिये श्री रामार्चा महोत्सव और उसके साथ-साथ सन्तों, विद्वानों तथा महापुरुषों एवं समस्त नगरवासी ब्राह्मणों को आमंत्रित कर श्रद्धा एवं प्रचुर दक्षिणा द्रव्य से युक्त 'महाभाण्डागार यज्ञ' करना चाहिये। दीन दुखियों को अन्न, धन, कम्बल, वस्त्रादि मुक्त हस्त से वितरित करना चाहिये। सम्पूर्ण मन्दिरों में हरिकीर्तन, जप, पूजा-पाठ, होम अनुष्ठानादि की शीघ्र ही व्यवस्था करनी चाहिये। समागत अतिथि, ब्राह्मण और ब्रह्मचारियों को उनकी अभिलषित वस्तुयें मुक्त हस्त वितरित करनी चाहिये। यह सुनकर सहृदय एवं उदार हृदय पुण्य-सदन सहर्ष तदनुसार व्यवस्था करने में यत्नशील हो गये।

पाँचवा परिच्छेद

अथ जन्म-महोत्सव

जिस समय की चिर काल से प्रतीक्षा थी, और जिसके देखने के लिये जप-तप समाधि संलग्न, निरन्तर दान दक्षिणादि से द्विज देव अतिथि एवं विद्वानों की पूजा के फलस्वरूप प्राप्त आशीष वाले दम्पति उत्सुक थे। वही सुखद समय आ गया। विक्रम[1] सम्वत् १३५६ में 'माघकृष्ण सप्तमी के मांगलिक दिवस में 'प्रातः काल से ही सम्पूर्ण प्रयाग नगर में सभी मार्ग, चौराहे एवं गलियाँ सुसज्जित कर दी गईं। नूतन आम्र पल्लवों के वन्दनवारों पुष्प गुच्छों एवं पताकाओं से अलंकृत सभी मुख्य द्वार एवं समस्त विशेष भवन देवभवन की भाँति सुशोभित हो रहे थे।

वहाँ सभी के घर के दरवाजे अबीर गुलालादि एवं रंगों से रंगे हुए तथा विविध कलश पल्लव, दूर्वा पुष्प-गुच्छ आदि से सुशोभित थे, भवनों के ऊपर रेशमी ध्वजायें, वायु के द्वारा आन्दोलित होकर सुदूरवर्ती मनुष्यों को मानो इस महोत्सव में सम्मिलित होने के लिये बुला रही हों, अथवा कहीं-कहीं उर्ध्वमुखी होकर उड़ती हुई पताकायें मंगल महोत्सव में मांगलिक गीत वाद्य हास विलास के लिये सजी-धजी देवलोक की अप्सराओं, गन्धर्वों का आह्वान कर रही हों, ऐसी प्रतीति हो रही है। सभी तरफ लिपी-पुती छिड़काव की हुई गलियों में छोटे-छोटे वृक्ष, झाड़ियाँ, चित्र-विचित्र, विविध रंगों से रंगे हुए धातु मिट्टी काष्ठ के विशिष्ट पात्र झाड़ियों के ऊपर मार्गों के दोनों तरफ सुशोभित हो रहे थे।

उस समय पुण्यसदन जी का भवन तो इन्द्र भवन के समान सुशोभित मंगल वाद्यों की ध्वनि से ध्वनिमय हो रहा था। समस्त नर-नारियों से व्याप्त सौभागिनियों के समूह से सुशोभित, देवाङ्गनाओं के जैसे सुन्दर

---

१. आचार्य विजय के परिच्छेद ५९ की "सप्तत्युत्तरशतायुरापूर्य" एवं विक्रम १३५६ तमे प्रादुर्भूय १५२६ तमे भगवत्सायुज्यमवापुः इन दोनों से निश्चित होता है कि स्वामी जी का प्राकट्य काल वि. १३५६ ही है १२५६ नहीं।

हर्षोल्लास का प्रदर्शन करती हुई सोलह वर्षीय हजारों युवतियों से, अप्सराओं के लोक के समान हो रहा था । नाना प्रकार के वाद्यों का संगीत कला कुशलों के द्वारा प्रदर्शन गंधर्वलोक जैसा था विविध मांगलिक वेष-भूषा से सुसज्जित ब्राह्मण समुदाय इन्द्र की सभा जैसा प्रतीत होता था सूतमागधवन्दी जनों के द्वारा प्रसारित गीतों के कारण राजभवन के समान प्रतीत हो रहा था । इसी प्रकार ऋग, यजु, साम, अथर्व वेदों के विद्वान् वैदिक ब्राह्मण समूह के द्वारा पृथक्-पृथक् स्वर पद क्रम घन जटा क्रम से उच्चारित उच्च स्वर से पूरित वैदिक आशीर्वचनों से ब्रह्मलोक के समान पुण्यसदन जी का घर सुशोभित हो रहा था ।

कहीं-कहीं सुगन्ध मिश्रित जल का यन्त्रों द्वारा छिड़काव करने से बूँदों की सघनता के कारण अन्धकार-सी प्रतीति होने से वर्षाकालिक समय का आभास होता था । नागरिक जनों के द्वारा अपने-अपने भवनों की साज-सज्जा की कुशलता के प्रदर्शन से विश्वकर्मा की कला-कौशल का सा अनुभव किया जाता था । देवताओं के मन्दिरों में ब्राह्मणों द्वारा दिव्य स्तुतियाँ की जा रही थीं, धार्मिक स्थलों पर धार्मिकों के द्वारा अनुष्ठान किये जा रहे थे, भावुक जनों के द्वारा मन्दिरों में भक्ति भावना का प्रवचन हो रहा था, याज्ञिकों के द्वारा यज्ञशालाओं में यज्ञनारायण का पूजन हो रहा था । इसी समय परम रमणीय सुखद मंगलमय बेला में, समस्त मानव मन के उल्लास के समय, शुभ लग्न में महासौभाग्यशालिनी श्री सुशीला देवी की कोख से परम कारुणिक करुणा वरुणालय लोकाभिराम श्रीराम जी सकल लोक कल्याणार्थ प्रकट हुए ।

मानो कन्दर्प के दर्प का शमन करने हेतु ही प्रभु ने अतीव सुन्दर अपने स्वरूप को प्रकट किया हो । अतः नितान्त सुन्दर शिशु को अपलक दृष्टि से सुशीला ने देखते हुये अनुभव किया, कि यह बालक तो वही है, जिसको मैंने तप के समय भागीरथी के किनारे वाली कुटी में धनुषबाण से समलंकृत देखा था । जैसे ही सुशीला ने प्रेम भाव विह्वल होकर चरण स्पर्श करना चाहा वैसे ही वे सामान्य शिशु के रूप में पुत्र के रूप में परिवर्तित हो गये । उस समय घर की प्रमुख दासी शीघ्र ही पुण्यसदन को मांगलिक सूचना देती है । पुण्यसदन प्रसन्न होकर दासी को अपने गले का हार उतार कर दे देते हैं ।

बालक के जन्म के समय बिना बादलों के आकाश से मन्द मन्द बादलों की गर्जना को लोगों ने सुना । उद्यानों की सुभग मन्जु मंजरियों के पराग से मस्त प्रत्येक शाखाओं पर बुलबुलें फुदकती, कूंजती एवं नाचती थी । समस्त लतायें, पुष्पों से सुशोभित मन्द वायु के झकोरों से नृत्य करती सी शोभायमान हो रही थी । समस्त वृक्ष उस समय प्रफुल्लित हो गये, झाड़ियाँ भी कुसुम गुच्छों से सुसज्जित एवं सुरभित हो गयी, गुलाब भी अपने पुष्पों से मकरन्द निकालकर भँवर समूह को अपनी तरफ आकर्षित कर रहे थे । कुञ्जन करती हुई कोयलें भगवत् प्राकट्य के सुखद समाचार का प्रसार कर रही थी । गुञ्जार करती हुई भ्रमरमाला भगवद् प्रादुर्भाव की प्रशस्ति का गान कर रही थी । सुगन्धित पुष्प भी समयानुसार अपनी सुरभिमयी सेवा समर्पित कर रहे थे । गंगा यमुना सरस्वती भी अपने संगम स्थल पर विविध तरंगों से कल्लोल करती हुई लोगों को आनन्द देती हुई, पृथ्वी पर बह रही थी । उस समय तीर्थराज प्रयाग भी साठ हजार तीर्थों के साथ सार्थक नाम वाले हो गये ।

महामहापुरुष का प्रादुर्भाव सुनकर उन की माँगलिक स्वागत सज्जा हेतु सुसज़्जित उच्चवंशीय कुल वधुएँ उच्च अट्टालिकाओं से उतरती हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानों देवांगनायें आकाश से उतर रही हैं । किन्नर एवं गन्धर्वों की पटरानियों के समान मंगल गीत गाती हुयी वनितायें बहुत बड़ी संख्या में नवजात शिशु के दर्शनार्थ आ रही थी । हरित दूर्वा अंकुर सरसों के पुष्पगुच्छों से युक्त पवित्र एवं अत्यन्त पुण्य प्रद गंगाजल से भरे हुए सुवर्ण कलशों से सुशोभित सिर वाली सुमुखियों ने अनेक प्रकार के बधाई और अभ्युदयोचित गीत गाती बजाती हुई श्रीपुण्यसदन जी के भवन को अलङ्कृत किया ।

महर्षियों के समान त्रिकालज्ञ मूहूर्त विशेषज्ञ ज्योतिषियों ने जन्म लग्न का शोध किया और सतत आशीर्वचन, वैदिक स्तुति, मन्त्रों का उच्चारण करने से समस्त भुवनों के पापरूपी बादल को दूर किया ब्रह्मा के समान वैदिक ब्राह्मणों ने वैदिक मन्त्रों के द्वारा स्वस्ति वाचन करते हुए बालक की रक्षा का विधान किया ।

और भी नागरिक नर नारियों ने नाना प्रकार की भेंट लिये हुए बड़े उल्लास के साथ जय-जयकार करते हुए श्री पुण्यसदन एवं श्री सुशीला जी को आनन्दित किया । बहुत दिनों के बाद चतुर्थ अवस्था में अद्भुत स्थिति

को उत्पन्न हुआ देखकर बड़े आश्चर्य के साथ आबालवृद्ध सज-धज कर मांगलिक गीतों को गाते एवं जयकार करते हुए आये, उनमें से कोई सरस्वती के समान विद्या विवेक वैभव से पूर्ण सूतिका गृह में श्री सुशीला जी की गोद में कज्जल युक्त कमल नयन जगत के पाप को समाप्त करने वाले नवशिशु की गुणगान वर्णन परक स्तुति करती थी । कोई लक्ष्मी के समान अपने हाथों में नाना प्रकार के रत्नों की आभा से अन्धकार को दूरकर उस बालक के लावण्य को देखने मात्र से आकृष्ट हृदय वाली लक्ष्मी के समान उनके श्री अंगों को अपने रत्नाभूषणों से आभूषित करने लगी ।

कोई गुणों से गौरी के समान अपने अभयद हाथ का स्पर्श करती हुई राईलोन (नमक) से बालक के दृष्टि दोष को दूर करने के लिए राईलोन की मुट्ठी से अनिष्टों को दूरकर अभय का वर प्रदान कर अपने हाथों के स्पर्श से दृष्टिदोष को दूर कर बालक को बार-बार लाड़ करती और श्री सुशीला जी के सौभाग्य की सराहना करती । कोई इन्द्राणी के समान अपूर्व वैभव को प्रदर्शित करती हुई बालक के वक्षस्थल के शोभनार्थ दे दीप्यमान रत्नों का हार धारण कराती हैं । बहुत सी आनन्द मग्न होकर बहुत से रत्नदीपों को सुसज्जित करके नवजात शिशु के द्वारा सुशोभित गोद वाली प्रसूता श्री सुशीला जी की आरती उतार रही थी ।

समान वय वाले पड़ोसी, सेठ, व्यापारी एवं धनी लोग पुण्य सदन के घर पहुँचकर दही, हल्दी, मक्खन, कुँकुम कस्तूरी चन्दन आदि एक-दूसरे के ऊपर फेंकते हुये नन्द महोत्सव जैसा दृश्य उपस्थित कर रहे थे । और पुण्यसदन के सौभाग्य का वर्णन करते । इस प्रकार प्रतिदिन उत्तरोत्तर वर्धमान यह बारह (द्वादश) दिवसीय महोत्सव सम्पन्न हुआ । और याचकों की मनोकामनायें परिपूर्ण हुई ।

आज प्रातः काल से दूर देश निवासी कृषकजन जो कि पुण्यसदन जी के अधिकार में रहते थे कौतूहल पूर्वक सानन्द भेंट लेकर पुण्य सदन के सौभाग्य की सराहना करते हुए ये भाग्यशाली आनन्दपूर्वक भेंट लिये हुए हँसते-गाते झुंड के झुंड आ गये ।

कुछ लोग जो, उस समय कृषि कार्य में संलग्न होने के कारण आने में असमर्थ थे वो इस समय बालके जातकर्म और नामकरण संस्कार

महोत्सव के अवसर पर अपने सिर पर दही-मक्खन की मटकियों को रखकर भाग लेने आये ।

बहुत से हस्तकला कुशल कारीगर रेशमी वस्त्रों में सुवर्ण के तारों का काम करके भेंट के रूप में लेकर दर्जीगणों के मुखिया जी के साथ आये । कुछ काष्ठ कला विशेषज्ञ खातीवृन्द चन्दन की लकड़ी के बजने वाले खिलौने बनाकर मंगल गीत गाते हुए मृदुल बिछौने से युक्त पालना और खिलौना को मंगल गीतों को गाते हुए भेंट करते हैं ।

दूसरे हाथी-दाँत के खिलौने बनाने वाले बड़े-बड़े हाथियों के दाँतों के हाथी, घोड़ा, बैल, ऊँट, नर्तक, नर्तकी, सैनिक आदि के खिलौने और नाना प्रकार के शुक, मयूर, हंस, सारस आदि के जोड़े अपने हाथों से बनाये हुए भेंट करते थे ।

इसी प्रकार तांबा-पीतल कांसा चांदी आदि धातुओं का काम करने वाले धातु कला विशेषज्ञ बच्चों के खेलने योग्य रथ, हाथी, घोड़ा, गाय आदि के खिलौने भेंट कर रहे थे ।

और दूसरे सोने चाँदी धातुओं से निर्मित कुछ विशुद्ध स्वर्ण एवं रजत निर्मित नाना प्रकार के पशु पक्षियों की आकृतियों से युक्त कुछ चांदी से बने हुए और कुछ सोने से निर्मित है । जिनमें मयूरों के पंखों को हरित (पन्ना) मणि से बनाया गया है । और उनका कण्ठ इन्द्रनीलमणि से इसी प्रकार नेत्रों की जगह भी इन्द्र नील मणि से जड़ित है । उनकी शिखा तीन प्रकार के रत्नों से बनी हुई है । इस प्रकार के मयूरों को जौहरी एवं स्वर्णकार समर्पित करते इति ।

'ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन पिता को नामकरण संस्कार करना चाहिये 'इस श्रुति के अनुसार चारों वेदों के मर्मज्ञ वैदिक विद्वानों ने जातकर्म संस्कार सम्पादित किया ।

सूतिका स्नान के बाद प्रसूता के हाथ से स्पर्श कराकर विविध अन्न रत्न आदि का दान घी, तिल-तेल का दान सप्त धातुओं से निर्मित वस्तुओं का दान करवाकर, सूर्य दर्शन के पश्चात्, बालक के मुखदर्शन के अनन्तर वस्त्र भूषणादि के धारण के विधान को करके, ऋषियों के समान भविष्य वक्ताओं में ज्योतिषियों के द्वारा जन्मपत्री पूजन व जन्मपत्री वाचन करवाकर भविष्यफल सुनने की विधि को किये ।

यह बालक वशिष्ठ जी के समान सद्गुणों से युक्त एवं महाज्ञान विज्ञान की राशि से युक्त होगा । और साक्षात् भगवान कपिल के समान समस्त माया ग्रन्थियों एवं संशयों का छेदन करने वाला होगा । और श्री शंकराचार्य के समान विद्वद् वरिष्ठ योगीराज परिव्राजक आचार्य विश्वविजयी जगद्गुरु होगा । इसके विरोधी भी सुखपूर्वक इनके चरण कमलों का आश्रय लेंगे । समस्त जीवों को सरलता-पूर्वक ज्ञान ज्योति प्रदान कर अज्ञान रूपी अन्धकार को हरण करेगा । प्राय: इसके दृष्टिपथ में आने वालों की चिन्ता, क्लेश, दैन्य, दासत्व, दुर्दिन आदि तत्क्षण दूर हो जायेंगे । यह सम्पूर्ण विश्व के द्वारा सम्माननीय, प्राणिमात्र को आनन्द सौख्य प्रदान करने वाला होगा और यह बालक सम्पूर्ण विश्व के लिये सम्माननीय शान्त दान्त तथा समस्त प्राणीमात्र को अपूर्व आनन्द तथा सुख प्रदान करता हुआ श्रीराम भक्ति परायंण होकर, समस्त मनुष्यों के उद्धार के लिये श्रीराम भक्ति का प्रचार प्रसार करने वाला होगा ।

शरण में आये समस्त जीवों के उद्धार का व्रत धारण करने वाला, श्री रामजी के समान सभी को आनन्द देने वाला ''श्री रामानन्द'' नाम से जगत्प्रसिद्ध सुसिद्ध होकर, कुत्तों, चाण्डाल आदि का भी उद्धारक होगा । जन्म पत्रिका में ग्रहों की स्थिति को देखकर यह अमित गुणों का समुद्र होने के कारण इनकी महिमा का वर्णन करने से परे हैं । अत: मैं संपूर्ण रूप से इसका वर्णन करने में असमर्थ हूँ । यह अनेक चमत्कारों को करने में चतुर होगा । गो-ब्राह्मण धर्म-मर्यादा की रक्षा में अत्यन्त दक्षता के साथ पृथ्वी की परिक्रमा करने वाला होगा और क्या कहूँ इति ।

इस प्रकार अपने पुत्र के अभ्युदय की भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त प्रमुदित मन से श्री पुण्यसदन जी ने खुले हाथों से स्वर्ण मुद्रा, वस्त्र, अलंकार और अलंकृतगौ आदि के द्वारा ज्योतिषियों को सम्मानित करके बालक के मंगल के लिये अपने कुल की मर्यादा के अनुसार क्रियाकलापों को करके सभी को दान-सम्मान पूर्वक ससम्मान विदा किये ।

छठा परिच्छेद

बाल-लीला

जैसे-जैसे श्री रामानन्द शुक्लपक्षीय चन्द्र के समान बढ़ रहे थे वैसे-वैसे ही जननी और जनक का आनन्द भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। आप अपनी मन्द मुस्कान से दर्शनार्थियों के चित्त को आनन्दित करते थे।

एक बार अपने पालने में सोये हुए अपने कर कमलों से पैर के अंगूठे को पकड़कर चूसते हुए तथा आनन्द का अनुभव करते हुए अध खुली आँखों से किलकारी मारते हुए माताओं के समूह को आनन्द प्रदान करने वाली कमनीय बाल लीलाओं को कर रहे थे। उसी समय एक स्त्री चकोरी के समान बालक की मुख सुधा की धारा के स्थल वाली उनके मुख चन्द्र का बड़ी देर तक चुम्बन कर, कई नाना प्रकार की भाषाओं को जानने वाली सरस्वती का अनुकरण करने वाली, शारदीय कमलिनी के समान नेत्र वाली, सुन्दर हास के द्वारा अपनी उत्कृष्ट सहृदयता का प्रकाशन कर उनका लालन करती थी। बालकों को प्रिय लगने योग्य अत्यन्त मधुर गीतों को (लोरी आदि) गा रही थी।

कोई अनन्य गति वाली स्थिर होकर स्वाभाविक लज्जाशील, सुशीलता स्नेहादि स्वरूपा, पृथ्वी स्वरूपा, प्रतिक्षण वर्धमान अनुपम सौन्दर्य को देखकर मन से मुदित होती हुई अपने नयनों के सौभाग्य को सराहती थी।

दूसरी कोई अपनी रूचिर ललित रचना के माध्यम से उस समय की कलुषित वृत्ति वाले लोगों से प्रताड़ित जनता की मानसिक वेदना एवं समाज की विषम परिस्थिति को गीत के माध्यम से मन्द-मन्द गति से गाती थी।

और भव्य भावना से युक्त एवं भारती विभूतिस्वरूप निरन्तर संस्कृतशेवधि से प्रसूत कुछ महिलाएँ पलना के समीप जाकर बालोचित बातचित के बहाने बच्चों की भाषा में ही वर्णनीय सम्पूर्ण विषयों का वर्णन किया।

बालक तुम मम प्राणाधार। प्रकट भये हो ज्ञानागार ॥१॥

संस्कृत निधि रक्षा का भार। तुम्हीं करोगे जगदाधार ॥२॥

जग में कोई न शरण प्रदाता। शोक मग्न का नहीं अधाता ॥३॥
तुम्हीं हो करुणा सागर स्वामी। संस्कृत संस्कृति रक्षक नामी ॥४॥
म्लेच्छी हिंसक स्वेच्छाचार। जलाए जाते ग्रन्थागार ॥५॥
भार हो रहा सद्व्यवहार। मूढ़ हो गया धर्माधार ॥६॥
नन्हें हुए ईशतरुणाओं। हे यतिराज दुर्मति नशाओं ॥७॥
ज्ञान ज्योति प्रकटित हो जग में। भक्ती प्रकटे परमेश्वर में ॥८॥

उसी समय एक पड़ोसिन किसी विशिष्ट पुरुष को अवतार लेकर बालरूप में भी अपनी विशिष्ट चेष्टाओं, महापुरुषत्व धारण किये हुए बालक को देखती हुई उनसे अत्यन्त लाड़ लड़ाती हुई बोली- आप सामान्य बालक बनकर इस प्रकार न पड़े रहो। धूर्तों दुराचारियों के द्वारा धार्मिक आचार विचार नष्ट किये जा रहे हैं। भारतीय संस्कृति छिन्न-भिन्न हो रही है। अब व्यास जी के अवतार की कोई आशा नहीं है। गौतम, व्यास, जैमिनी, कणाद एवं कपिल अब नहीं दिखाई दे रहे हैं। पाणिनि, पतञ्जलि, गार्गी गुफाओं में छिप गये हैं गीर्वाण वाणी समुपासक ब्रह्मविद् ब्राह्मण भी अपने-अपने बालकों को म्लेच्छ भाषा का अभ्यास कराने लगे हैं। विदेशी भाषा का सम्मान हो रहा है। संस्कृत भाषा मृतभाषा कही जा रही है। विक्रमादित्य एवं भोजराज भी भोगासक्ति में तन्मय हैं। सुरभारती के उद्धार हेतु कोई प्रवृत्त नही हो रहा है। प्रायः क्षत्रियलोग भी म्लेच्छ संस्कृति के उपासक बनकर समाज के शोषक बन गये हैं। कोई धनी सेठ भी नहीं दिखाई पड़ रहे हैं, जो अपने धन से संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार करने में संस्कृति की इच्छा में अपने धन को व्यय करने की रूचि रखते हैं और जो लोग भारतीय संस्कृति के पोशक शास्त्र में वर्णित मार्ग का आश्रय लेकर तीनों वर्णों की सेवा करने वाले उनकी सेवा से ही अपना उद्धार मानने वाले शास्त्रीय मर्यादा का पालन करने वाले चतुर्थ वर्ण के लोग भी धूर्तम्लेच्छों के अन्धानुयायी हो उनके मायाजाल में पड़ गये हैं। उनके बाहरी चकाचौंध से विवेक शून्य होकर परम्परा से आये अपने आचार विचार की परिपाटी को छोड़कर उनके द्वारा कहे गये रास्ते से स्वयं को द्विजों के समान प्रकट करते हुए अपनी त्रिशंकु जैसी स्थिति को नहीं जान रहे हैं। इससे अच्छा और क्या होगा। जब यह सब आप स्वयं ही देखेंगे।

प्राय: समस्त जनता पश्चिमी और पूर्व की तरफ से आने वालों के चकाचौंधमय वचन जाल में पड़कर अपने कुल परम्परा के आचार-विचार की परिपाटी की अवहेलना करते हैं धर्मानुकूल परम्परा को नहीं मान रहे हैं न तो गुरुजनों के वचनों को सुनते हैं और न ही शास्त्र मर्यादा को मानते हैं ।

अधिक क्या कहूँ धर्म के विरूद्ध प्रचार करने वाले स्वेच्छा के अनुरूप धर्म के स्वरूप का प्रतिपादन कर "जब तक जीवो सुख से जीवो" ऋण लेकर भी घी पिओ-आग में जलने के बाद भला यह शरीर पुनः कभी प्राप्त हो सकता है ? नहीं कभी नहीं-ऐसा दुष्प्रचार कर रहे हैं ।

देह से भिन्न अन्य कोई आत्मा या परमात्मा नहीं है । आप लोग व्यर्थ में शरीर को क्यों कष्ट दे रहे हैं । मोक्ष कुछ नही हैं-मृत्यु ही मोक्ष है। इस प्रकार पाखण्डी लोग लोगों को दिग्भ्रमित कर रहे हैं ।

अत: हे प्रभु जल्दी तरूण होकर इन दुर्जनों दानवपन धारण करने वाले घातक लोगों को समाप्त करें । इस प्रकार नर नारी अत्यन्त खिन्न एवं आकुल होकर कहते हैं कि हे प्रभु यह प्रतीक्षा का समय नहीं है ऐसा कहकर व्याकुल नर और नारी सब के सब नितान्त खिन्न होने के कारण अबोध बालक को परम चतुर शिशु को भी तरुण मानती हुई एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करती हुई पालने में सोये हुए बालक को महापुरुंष सूचित कर रही हैं ।

जब शिशु रामानन्द दो वर्ष की आयु को पूरा करके तीसरे वर्ष में प्रवेश कर रहे थे, उस समय एक बार कभी गिरते, फिर उठते, लड़खड़ाते हुये चलते हुए दोनों करकमलों में दो लड्डू लेकर कुछ खाते कुछ गिराते हुए अपने आंगन में खेल रहे थे उसी समय आँगन में उड़कर एक कौआ आ गया और शिशु के मोदक कण जो आँगन में बिखर कर गिरे थे उन्हें चुन-चुनकर खाने लगा । कभी-कभी वह कौआ हाथ से लड्डू छीनने की चेष्टा करता था । कभी नाचता था कभी खाता था । यह दृश्य बाल प्रभु श्री राम एवं काक-भुशुण्डि की बाल लीला की स्मृति दिला रहा था ।

उसी समय नितान्त एकान्त देखकर कोई वानर भी वहाँ आकर शिशु के मुख को देखता हुआ उसके मुख या हाथ से गिरे हुये लड्डू के टुकड़ों को उठा-उठा कर स्वयं खा रहा था । बालक उसकी पूँछ को पकड़कर

प्रायः समस्त जनता पश्चिमी और पूर्व की तरफ से आने वालों के चकाचौंधमय वचन जाल में पड़कर अपने कुल परम्परा के आचार-विचार की परिपाटी की अवहेलना करते हैं धर्मानुकूल परम्परा को नहीं मान रहे हैं न तो गुरुजनों के वचनों को सुनते हैं और न ही शास्त्र मर्यादा को मानते हैं।

अधिक क्या कहूँ धर्म के विरूद्ध प्रचार करने वाले स्वेच्छा के अनुरूप धर्म के स्वरूप का प्रतिपादन कर "जब तक जीवो सुख से जीवो" ऋण लेकर भी घी पिओ-आग में जलने के बाद भला यह शरीर पुनः कभी प्राप्त हो सकता है ? नहीं कभी नहीं-ऐसा दुष्प्रचार कर रहे हैं।

देह से भिन्न अन्य कोई आत्मा या परमात्मा नहीं है। आप लोग व्यर्थ में शरीर को क्यों कष्ट दे रहे हैं। मोक्ष कुछ नही हैं-मृत्यु ही मोक्ष है। इस प्रकार पाखण्डी लोग लोगों को दिग्भ्रमित कर रहे हैं।

अतः हे प्रभु जल्दी तरूण होकर इन दुर्जनों दानवपन धारण करने वाले घातक लोगों को समाप्त करें। इस प्रकार नर नारी अत्यन्त खिन्न एवं आकुल होकर कहते हैं कि हे प्रभु यह प्रतीक्षा का समय नहीं है ऐसा कहकर व्याकुल नर और नारी सब के सब नितान्त खिन्न होने के कारण अबोध बालक को परम चतुर शिशु को भी तरुण मानती हुई एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करती हुई पालने में सोये हुए बालक को महापुरुष सूचित कर रही हैं।

जब शिशु रामानन्द दो वर्ष की आयु को पूरा करके तीसरे वर्ष में प्रवेश कर रहे थे, उस समय एक बार कभी गिरते, फिर उठते, लड़खड़ाते हुये चलते हुए दोनों करकमलों में दो लड्डू लेकर कुछ खाते कुछ गिराते हुए अपने आंगन में खेल रहे थे उसी समय आँगन में उड़कर एक कौआ आ गया और शिशु के मोदक कण जो आँगन में बिखर कर गिरे थे उन्हें चुन-चुनकर खाने लगा। कभी-कभी वह कौआ हाथ से लड्डू छीनने की चेष्टा करता था। कभी नाचता था कभी खाता था। यह दृश्य बाल प्रभु श्री राम एवं काक-भुशुण्डि की बाल लीला की स्मृति दिला रहा था।

उसी समय नितान्त एकान्त देखकर कोई वानर भी वहाँ आकर शिशु के मुख को देखता हुआ उसके मुख या हाथ से गिरे हुये लड्डू के टुकड़ों को उठा-उठा कर स्वयं खा रहा था। बालक उसकी पूँछ को पकड़कर

चारों और खींचते हुये खेल रहा था । कभी स्वयं शिशु अपने हाथ से वानर को खिलाता था और बन्दर के साथ प्रेम पूर्वक खेल रहा था । ऐसी प्रतीत होता था, मानों स्वयं श्री हनुमान जी अपने स्वामी रघुकुल नायक श्री राम को बालरूप में अवतरित जानकर उनके साथ क्रीड़ा कर रहे हों ।

इस नर वानर क्रीड़ा को देखकर मातृस्नेह के कारण भयभीत एवं चकित माता सुशीला वानर को भगाने के लिये छड़ी लेने हेतु भीतर गयीं । जब लौटकर आई तो देखा न वहाँ कोई वानर था नहीं कोई कौआ । केवल अकेले शिशु रामानन्द पलंग पर खेल रहा था, जब छड़ी फेंककर सुशीला स्वकार्य में संलग्न हो गई तब पुनः वही बन्दर और वही कौआ उसी प्रकार शिशु से खेलने लगे । शिशु किलकारी मारता हुआ बन्दर के ऊपर-बैठने का प्रयत्न कर रहा था और बन्दर अपने हाथों से शिशु के चरणों को पकड़कर धीरे-धीरे उठा रहा था फिर धीरे-धीरे चरणों को नीचे रख रहा था । यह दृश्य देखकर माता सुशीला ने यह सोचकर कि कहीं बन्दर शिशु को काट न ले या नाखून न लगा दे किसी अपनी दासी को बुलाया । इतने में ही वह दृश्य पुनः अदृश्य हो गया । सुशीला बालक को अपनी गोद में लेकर तथा अपनी साड़ी के आँचल में शिशुका सिर ढककर इस वृत्तान्त को सुनाने के लिये श्री पुण्यसदन के समीप पहुँची ।

इस सम्पूर्ण लीला को जाग्रत स्वप्न के समान प्रत्यक्ष देखकर अत्यन्त काँपती हुई सुशीला जी श्री पुण्यसदन को सुनाकर प्रसन्न होकर श्री रामानन्द जी के मधुर मुखकमल को बार-बार चूमती लाड़ लड़ाती, स्नेहाधिक्य से चुचाते हुए दूध से युक्त उनको अपने स्तनों का पान कराती, किन्तु अभी भी उनका कम्पन शान्त नहीं हुआ ।

इस वृत्तान्त को सुनकर हर्ष गद्गद् उल्लास एवं स्नेह पूर्वक बालक को देखकर साक्षाद् भगवद् रूप में बालक को मानते हुए श्री पुण्यसदन जी श्री सुशीलाजी से बोले हे प्रिये ! इस प्रकार से किसी के सामने मत बोलना, यह तो श्रीरामजी की ही बाललीला है ।

सातवाँ परिच्छेद

उपनयन संस्कार

सम्पूर्ण पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती, वहीं के नगर, गाँव, ढाणी, वन-उपवन सभी जगह, सब कुछ करने वाले, सुकुमार कुमार कुसमामुध कामराज के प्रभाव से, वन-उपवन लतायें सभी नवीन सुकोमल नानाविधि पल्लव-पुष्पों से सुशोभित, सुगन्धादि सम्पत्ति से विश्व को उद्भाषित करने वाले शोभा को धारण करने वाले, मही मण्डन स्वरूप महिला समूह के मन को प्रमुदित कर हँसी मजाक आदि के लिए अनुकूल वातावरण से पटुता प्रदान करने वाले, समस्त जगत की जड़ता को दूर करने वाले, बसन्त का ही संवर्धमान सौभाग्य साम्राज्य नेत्रों के सामने आ रहा है । इस समय चहुँ ओर पतझड़ के पश्चात् नव किसलयों से सुशोभित, नवीन पुष्पों के समूह से समलंकृत एवं लताओं से वेष्टित होते हुए भी मन्द-मन्द पवन के झकोरों से झकझोरित लतायें काम के रंग में रंगी के सदृश, निकट के वृक्ष समूहों से अच्छी प्रकार लिपटती हुई शीघ्रातिशीघ्र दूसरे वृक्ष से समाहित हो सदैव के लिए मानो संगति कर ली है । इस प्रकार अद्भूत रंग के रंग में रंगे हुए बसन्त की विशेषता शोभायमान होती हुई प्रकाशित हो रही है ।

प्रत्येक जगह लोग अपने प्रेमीजनों के आगमन की बहुकालिक प्रतीक्षा के आधीन विरहातुर महीना दिन गिनते हुए भी शीघ्र मिलन रूपी सुख की आशा से प्रसन्न थे । खेतों में खिली सरसों की खेती मान से भरी ललना समूह को अपनी पीतिमा एवं शीतलमन्द सुगन्धि सुरभि से मदन-महोत्सव मनाने के लिए प्रमुदित कर रही थी ।

चहुँ ओर आम्रवृक्ष भी अपनी मधुमयी मञ्जरी समूह से सुशोभित मानव मन को मतवाला कर रहे थे । कोयलों का शाखा प्रशाखाओं पर चढ़कर मञ्जरी के मधु मय रस का आस्वादन कर सुन्दर कण्ठ से कुहू-कुहूकर कुञ्जन करना चारों ओर सुनने वालों के कानों में सुधा धारा प्रवाहित कर रहा था ।

चारों तरफ पुष्प गुच्छों पर भ्रमण करने में चतुर भौरे खूब मकरन्द पीने से मस्त भ्रमरियों के साथ एक ही पुष्प रूपी पात्र में रस पीकर, साथ में सुन्दर गुञ्जार करते हुए गुलाब, कचनार, कुन्द कुसुम आदि के द्वारा प्रोत्साहित से किये हुए मानों कामिनियों को उन्मादित करने के समान क्रीड़ा कर रहे थे।

इस प्रकार चहुँ ओर सुरभित मनमुग्धकारी वातावरण को देख प्रसन्न मुख वाले श्री पुण्यसदन जी अपने पुत्र की पाँच वर्ष से अधिक की आयु देखकर शास्त्र वचनों का स्मरण किये।

''ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥''

ब्रह्मतेज की कामना से ब्राह्मण बालक का पांचवें वर्ष, बल की इच्छा से क्षत्रियों को छठे वर्ष एवं धनार्थी वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार होना चाहिए।

ऐसा सोचकर अपने कुल पुरोहित को बुलाकर ''बसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयेत्'' बसन्त ऋतु में ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत सम्पन्न कर उसको पढ़ावें। इस नियम के अनुसार बसन्त पञ्चमी तिथि को सबसे सुन्दर मंगलमय समय का मुहूर्त यज्ञोपवीतार्थ निश्चित किया। इसी के अनुरूप समस्त सामग्री संग्रहणार्थ घर के समस्त सदस्यों को नियोजित किये। यद्यपि इस कार्य के लिए निज भवन भी पर्याप्त रूप से बड़ा था किन्तु, महापुरुषपने को प्राप्त महामहिमशालियों का पवित्र पुण्यमय मांगलिक संस्कार पुण्य प्रदेश में ही होना चाहिए। इस प्रकार का विचार-विमर्श करके त्रिवेणी संगम के विशाल तट पर सुन्दर विस्तृत मण्डप की व्यवस्था की गयी। वहीं पर गगनचुम्बी प्रधान ध्वजा फहराई गई एवं सहस्रों विविध रंगों की पताकायें लगाई गई। आहूत प्रधान महापुरुषों के लिए सैकड़ों रावटियों का निर्माण किया गया। अनेकों महर्षियों के समान सन्तों, महन्तों एवं योगियों के आराधनार्थ कुटियों के समान छोटे-छोटे घरों की रचना की गई।

जगह-जगह प्रवेश द्वारों पर केले के पेड़ सुशोभित हो रहे हैं। चारों तरफ के आधा कोस की भूमि मधुर ध्वनि करने वाले यन्त्रों, अशोक के पल्लव एवं पुष्पों के गुच्छों से सुसज्जित की गई। मानो, स्वयं कुसुमाकर

(बसन्त) अपनी सुगन्धमयी सम्पत्ति को फैलाकर अपने आगमन की सूचना प्रदानार्थ प्रयोग कर रहा हो एवं द्वारपाल की प्रतिज्ञा का पालन करता सा रक्षक के समान खड़ा हुआ प्रतिभाषित हो रहा था। मण्डपों में योग्यतानुसार विलग-विलग निवास आवासकी परिकल्पना की गयी थी। सभी जगह सुन्दर पलंगों उनके ऊपर ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र, मनोहारी मखमल के आसन लगे हुए थे। ऋषि मुनियों के लिए सुन्दर पवित्र मुलायम कम्बल के आसन, मृगचर्म, कुशासनों की समुचित व्यवस्था सम्पन्न की गई।

यज्ञोपवीत के योग्य मण्डप के चारों ओर होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता ब्रह्मा व आचार्यगणों के लिए यथा योग्य चांदी आदि की चौकी, पीढ़े की समुचित व्यवस्था की गई थी। उस समय यज्ञोपवीत के लिए वरण किये गए बटुक एवं आनन्दित गायत्री उपदेशक आचार्य दोनों के लिए आमने-सामने सोने की दो चौकियाँ रखी गई। मण्डप की शोभा बढ़ाने वाले नाना प्रकार के झाड़ फानूस लगे थे। मण्डप के दरवाजे पर जगह-जगह भेरी, मृदंग, ढोलक, गोमुख आदि अनेक वाद्य, वादकगण, शहनाई आदि मधुर स्वरों में बजा रहे थे। बहुत से देश-विदेश से बुलाए गये संगीत नृत्य में प्रतिष्ठित विशेष कला मर्मज्ञ तथा नर्तकियाँ वहीं पर एक उच्च रंगमञ्च पर अपनी-अपनी कला कुशलता का प्रदर्शन करते हुए कलाकारगण सुशोभित हो रहे थे।

इस समय गायत्री उपदेश के लग्न की बेला में दो दिवस बाकी हैं। समस्त साज-सज्जा की विधि सम्पन्न हो गई, दूर-दराज से आमन्त्रित निमन्त्रित विशिष्ट एवं सम्बन्धी लोग एकत्रित हो चुके हैं, सजे धजे पाण्डाल के बटुक के मातृपक्ष और अलंकृत बन्धु बान्धवों तथा महामहिम लोगों के द्वारा भर जाने से वह क्षेत्र अत्यन्त दर्शनीय एवं रमणीय हो गया था। आदरपूर्वक बुलाए गए ब्राह्मण, याज्ञिक, ऋत्विग् आदि से अतिथि शाला सुशोभित हो रही थी।

त्रिवेणी संगम पर नवनिर्मित बड़ी-बड़ी सुशोभित पर्णशालाएँ भी भर गई थी। वैदिक गण माघ माह में मकर संक्रान्ति के समय महाकुम्भ के अवसर पर पुण्य प्राप्ति की इच्छा से एकत्रित हुए सन्त, महन्त तथा मुनिवरों के समान शोभित हो रहे थे। आनन्द से भरे हुए हजारों प्रयागवासी नर,

नारी, बाल, वृद्ध उत्सव को देखने की इच्छा से झुण्ड के झुण्ड अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए आ गए ।

चिर प्रतीक्षित बसन्त पंचमी का दिन आ गया । प्रशस्त ऊषाकाल से ही कार्यारम्भ हो गया । चौलादि कर्म के बाद रेशमी पीताम्बर से सुसज्जित दिव्य तेज समन्वित वटु श्री रामानन्द मण्डप में पधारे । दर्शकों के नेत्र सफल हों गये । सभी श्रोत्रिय ब्राह्मण स्वस्ति वचनों से, ऋषि मुनि शुभाशीषों से वटु का मार्जन अभिषेक कर अलग-अलग मन्त्रों से मौञ्जी, मेखला, दण्ड, कमण्डलु आदि धारण कराते हुये अभिजित् मुहूर्त्त में यज्ञोपवीत धारण कराके गायत्री का उपदेश निर्देशानुसार श्री पुण्यसदन ने स्वयं किया । दर्शकों ने हर्षातिरेक से पुष्पवृष्टि की । जयकार किया । नारियों के मांगलिक गीत गूँज उठे । अपने सम्मुख साक्षात् त्रिविक्रम (वामन भगवान) की भाँति विराजमान श्री रामानन्द बटु को आचार्य ने स्नेह के साथ उपयुक्त, समयोचित उपदेश इस प्रकार दिया ।

आयुष्मन् ! वत्स रामानन्द ! सावधान हो जाओ । उपदेश को अवधान पूर्वक श्रवण करो-जन्म से बटु मात्र ब्राह्मण होता है किन्तु संस्कार के बाद ही उसे द्विज कहा जाता है । अब आपने द्विजत्व कों प्राप्त कर लिया है । यह तुम्हारे अध्ययन का समय है वत्स ! बारह या सोलह वर्ष तक अथवा यथारूचि बत्तीस वर्ष या उससे भी अधिक ब्रह्मचर्य की इस ब्राह्मण परम्परा का पालन करो । चार आश्रमों में यह प्रथम आश्रम है । सभी का आधारभूत हैं ।

इस आश्रम के विधिपूर्वक पालन करने से अन्य सभी स्वतः सिद्ध हो जाते हैं । सभी प्रकार के ज्ञान विज्ञान के सम्पादन का यही हेतु है । यही सभी आश्रमों तथा कर्म ज्ञान भक्ति मार्गों की आधार शिला है । श्रुति स्मृति, पुराणादि वाक्यों एवं गुरु वाक्यों में श्रद्धा तथा विश्वास रखकर दृढानुराग से इन नियमों का परिपालन करना चाहिये ।

प्रतिदिन सन्ध्योपासन करनी चाहिए इस वाक्य के अनुसार प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर शौचादि दन्तधावनादि करके सम्यक् स्नान करके किसी दूसरे से न स्पृष्ट हो ऐसे कौपीन, अधोवस्त्र एवम् उत्तरीय वस्त्र को धारण करके लोकाचार, वेद कुल शाखा और गुरु परम्परा के अनुसार सन्ध्या की

समाराधना करके आचमन, प्राणायाम, आसनशुद्धि, शिखा बन्धनादि करके तीन बार, एक बार, अथवा पॉच बार उपदेश के अनुरूप प्राणायाम करके मार्जन आचमन, पुनर्मार्जन, अपामुपस्पर्शन, आघ्राण, अघमर्षण, सूर्यार्घ्यदान, गायत्री का आवाहन करके पुनः प्राणायाम और आचमन सम्पन्न करके न्यासों और मुद्राओं का प्रदर्शन करके शक्ति और समय के अनुरूप १ हजार, ३०० अथवा १०८ बार गायत्री का जप करके अपने इष्टदेव को समर्पित करके पुनः न्यास करके सूर्योपस्थान करके विसर्जन करके फिर अग्निहोत्र करे। दिन में न सोयें, झूठ न बोले, बिना वस्त्र पहने "नंगा होकर स्नान न करें। न सोये न झूठ बोले, जल में मलमूत्र का त्याग न करें। बिना हाथ पैर धोये भोजन न करें। सामने परोसी हुई थाली में पहले अन्न की प्रार्थना करें फिर जल से थाली के चारों तरफ सिंचन करें उसके बाद पाँच चित्राहुति देवें फिर आचमन करें फिर अपने मुख में पञ्च प्राणों की आहुति दें। उसके बाद मौन होकर भोजन करें अन्त में पुनः आचमन के बाद हाथ धोकर कुल्लादि कर लें फिर विश्राम अध्ययनादि करें। हमेशा पवित्र रहे, जल लेकर ही लघुशंका करने जाये। मूत्र विसर्जन के पश्चात् जननेन्द्रिय को जल से धोकर फिर उठे शुद्ध जल से हस्तप्रक्षालन एवं कुल्ला करें। मल विसर्जन के समय भी एक बार लिंग में तीन बार गुदा में, १० बार बायें हाथ में, सात बार दोनों हाथों में मिट्टी लगानी चाहिए फिर १२ कुल्ला करें। एकान्त में स्त्रियों से बातचित न करें। कहीं भी लकड़ी की बनी स्त्री की प्रतिमा का बायें पैर के अंगूठे से भी स्पर्श न करें हाथ से स्पर्श तो बहुत दूर है। स्त्री सम्बन्धियों से वार्तालाप और उनका स्मरण भी न करें इससे भी ब्रह्मचर्य खण्डित होता है कहा भी है- स्त्रियों के स्मरण, नाम लेने से, क्रीड़ा, दर्शन, गोपनीय वार्ता, उनसे मिलने का संकल्प, निश्चय एवं उनकी क्रिया से आनन्द ये आठ मैथुन के ही अंग है इन सबका परित्याग करके ब्रह्मचर्य की रक्षा करें, ब्रह्मचर्य को खण्डित न करें।

ब्रह्मचारियों के मध्य में चार प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं- एक केवल सेंधा नमक लेकर, तीन रात्रि (रातदिन), त्रिपदी गायत्री का जप करते हुए रहते हैं, वे गायत्री ब्रह्मचारी होते हैं। दूसरे सम्पूर्ण वेदाध्ययन के बाद पूर्वोक्त रीति के अनुसार ब्रह्मचर्य से रहते हैं, वे लोग बाह्य ब्रह्मचारी होते हैं। तीसरे यज्ञोपवीत संस्कार के उपरांत संवत्सर पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करते हैं

वे प्राजापत्य ब्रह्मचारी कहलाते हैं । कुछ लोग यज्ञोपवीत के पश्चात् जीवन पर्यन्त गुरुकुल में निवास करते हुए अध्ययन में ही संलग्न रहते हैं, ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते हैं । इस प्रकार के वटु का ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्कृष्ट परम तप है, इसीलिए कहा गया है- ''ब्रह्मचर्येण समं नास्त्यन्यत्'' न तपस्तप इत्याहु-र्ब्रह्मचर्य्यं परंतपः ब्रह्मचर्य के समान आत्मोत्थान का दूसरा साधन नहीं है । शरीर को तपाना तप नहीं कहा गया है, वस्तुतः ब्रह्मचर्य ही परम तपस्या है । यह ज्ञान संकलनी तंत्र में वर्णित है । इसका फल मृत्युंजयत्व है । यथा- अथर्ववेद में- ''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत्'' इति इससे ही देवता अमर हो गये और भी पार्थिवा दिव्याः आरण्याः ग्राम्याश्च ये, ये ते जाता ब्रह्मचारिणः इति अथर्व. से. १३/३/०७ राजागण अथवा राजा देवता पशु और ग्रामीणों में जो भी ब्रह्मचर्य के पालक हुए वो दीर्घ आयु वाले हुए और इसी प्रकार ''ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः (योग सूत २१३८) ब्रह्मचर्य के पूर्ण पालन से वीर्य का लाभ होता है, जिससे आध्यात्मिक उन्नति भी रहती है । वीर्य की अभिवृद्धि से शरीर मन और इन्दियों को बल की प्राप्ति होती है । जिससे निरोगता और अजर अमरत्व की प्राप्ति होती है तथा बुद्धि का विकास स्मरणशक्ति में बढोतरी, धारणाशक्ति में सामर्थ्याधिक्य एवं दीर्घायु की प्राप्ति, सभी प्रकार से ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाला अकाल मृत्यु आदि से रहित हो, स्वेच्छामृत्यु वाला हो जाता है । जैसे गंगा पुत्र भीष्मजी, बहुत क्या कहूँ वह (अथर्व. सं. ११/७/१ के अनुसार) ''सदाधार पृथिवीदिवं, स आचार्य तपसा सा पिपर्ति'', ऐसा नैष्ठिक ब्रह्मचारी अपने तप से स्वात्मबल से निश्चित रूप से विश्व को धारण करने वाली सम्पूर्ण पृथ्वी स्वर्ग तथा अपने आचार्य का पालक होता है ।

इस समय आप यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त हो गये हो, अतः ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुल में निवास करते हुए आचार्य से वेदाध्ययन करें । आश्रम के समस्त नियमों को भली-भाँति पालन करें । हे तपस्वी बटु । मैं उन नियमों को बता रहा हूँ, वहाँ के नियम हैं- आप ध्यान से सुनो ।

''उगते हुए अथवा अस्त होते हुए सूर्य को नहीं देखना चाहिए'' सूर्योदय से पहले उठना चाहिए । शरीर के नित्य कृत्यों को करके उदित होते हुए सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें । प्रातः मध्याह्न और सायं सन्ध्याओं को करते हुए प्रातः एवं सायंकाल प्रतिदिन अग्निहोत्र भी करें । आश्रम के नियमानुसार भिक्षाटन आदि भी करें । जंगल से कंदमूल, फल आदि लाकर गुरु को

प्रदान कर, उनकी आज्ञा से उनके अनुसार उतनी मात्रा में लेकर संतुष्ट हों उतना ही खाकर शान्ति से अध्ययन करें । समिधादि को लाकर आश्रम की अग्नि का संरक्षण करना और अधोलिखित वस्तुओं का सर्वथा त्याग करना ।

यथा- इतर, शहद, पुष्पमाला, काजल, जूतियाँ, छत्र, चँवर, नृत्य, गीत, जुआ, परनिन्दा, झूठ बोलना, प्रमाद, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, असावधानी, घमण्ड, दिन में सोना, मादक द्रव्यों का सेवन, अश्लील साहित्य का पाठ, अश्लील भाषण, एकान्त में स्त्रियों से मिलना, उनसे बात करना, उनका स्पर्श करना, बार-बार उनकी तरफ देखना व उनका स्मरण करना, खाट पर सोना, कामी जनों के साथ वार्ता करना, झूठ-पाखण्ड वितण्डा, किसी को दण्ड देना, ये अनावश्यक कार्य सभी त्याज्य हैं ।

गुरु की आज्ञा से ही युक्त आहार आदि का सेवन, सदा गुरुजी की परब्रह्मभाव से सेवा करना, उनकी आज्ञानुसार ही सोना-जागना आदि कार्य करना, गुरु के सम्मान की रक्षा, संयत भाषण, गुरु के सामने ऊँचे आसन पर न बैठे, ऊँचे स्वर में न बोले सभी प्रकार से गुरु की आज्ञा का पालन करने वाले ब्रह्मचारी बटुक पर सभी देवता और पितर प्रसन्न होते हैं ।

हे ब्रह्मचारी इस समय आप यज्ञोपवीती हो गये हो अत: यज्ञोपवीत के विषय में भी कुछ कहना हैं जिसे मैं कह रहा हूँ, उसे भी आपको सावधानी पूर्वक सुनना है । यज्ञोपवीत का क्या स्वरूप है ? किस प्रकार से इसकी रचना की जाती है ? इसकी रचना में कितने तन्तु होते हैं ? क्यों होते हैं ? इतनी संख्या का क्या स्वरूप है ? इत्यादि ।

इन उपस्थापित संस्कारों में यह द्विजातियों का मुख्य संस्कार है । द्विजों में इसी संस्कार से द्विजत्व आता है । अत: स्वर्णिम रत्न आभूषणों से अत्यधिक मूल्यवान् सर्वस्व रूप साक्षात् ब्रह्म स्वरूप ही है यज्ञोपवीत । वेदाध्ययन में अधिकार यज्ञादि के अलौकिक फल प्राप्ति में तथा ब्रह्मज्ञानादि की योग्यता को प्राप्त करने वाला, यज्ञोपवीत संस्कार है । यज्ञोनारायण: साक्षात् भगवानिति शुश्रुम "यज्ञो ह वै नारायण:" अर्थात् साक्षात् श्री भगवान् श्री नारायण यज्ञ हैं, इत्यादि श्रुति स्मृतियों के द्वारा भगवदीय सत्ता सिद्ध है । उनका प्रतिपादन करने वाले वचन स्मृति सार में भी है होतागणों के द्वारा उपवीत का परमात्मा के लिए यज्ञ यह नाम कहा जाता है । इसीलिए इसका

नाम यज्ञोपवीत है और भी ''यज्ञो वै विष्णुः'' यज्ञ विष्णु ही है । विष्णुर्यज्ञ इत्यादि यज्ञस्वरूप परमात्मा उसके (उप) समीप (विस्त) प्रपर्याप्त पहुँचाता है । अर्थात् भगवद् प्राप्ति का साधन, इस प्रकार से यज्ञ यागों का अधिकार कराने वाले भगवान ही हैं उन्हीं का प्रतिनिधि (प्रतीक) रूप ही यह सूत्र है । इसीलिए इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं । बिना इसके धारण किए कोई भी सत्कर्म संपन्न नहीं होते हैं । बिना यज्ञोपवीती ब्राह्मण समस्त कार्यों यज्ञ आदि से बहिष्करणीय होता है । इसीलिए कहा गया है कि हमेशा चोटी बाँध कर अथवा यज्ञोपवीत के साथ रहना चाहिए । बिना चोटी व बिना यज्ञोपवीत के जो द्विजाति सत्कर्म करता है वह न किये के बराबर होता है । अतः आजीवन यज्ञोपवीत को धारण करना चाहिए । एक क्षण के लिए भी इसको शरीर से अलग नहीं करना चाहिए । यदि क्षण भर के लिए भी त्याग करते हैं तो उसके लिए प्रायश्चित का विधान है ।

''विना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिबति द्विजः ।
उपवासेन चैकेन पञ्चगव्येन शुध्यति ॥
विना यज्ञोपवीतेन विण्मूत्रोत्सर्गकृद्यदि ।
उपवासद्वयं कृत्वा दानैर्होमैस्तु शुद्ध्यति ॥''

जो द्विज विना यज्ञोपवीत के जल पीता है तो वह एक दिन का उपवास तथा पंचगव्य लेने के बाद शुद्ध होता है और जो बिना यज्ञोपवीत टट्टी-पेशाब करता है, उसको दो दिन उपवास करने के बाद हवन और दान से शुद्ध होता है । नियत समय से अधिक अर्थात् तीन रात्रि पर्यन्त यदि जनेऊ से रहित रहता है तो वह अनुपवीती हो जाता है । ऐसी स्थिति में पुनः संस्कार होने पर ही शुद्ध होता है । अतः यज्ञोपवीतधारण काल से मरण काल पर्यन्त द्विज को यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है । द्विज का तो शवदाह लोक परम्परा में यज्ञोपवीत के साथ होता है ।

यज्ञोपवीत रचना की विधि इस प्रकार है- सौभाग्यवती अथवा कुँवारी कन्या या स्वयं के हाथ से काते हुए सूत छियानबे अंगुल नापकर चौगुना किये गये सूत से इसका निर्माण होता है । अर्थात् धन चतुरंगुल के चारों तरफ छियानवे बार घुमाने से जितना धागा होता है, उससे यज्ञोपवीत का निर्माण होता है । इसका यह तात्पर्य है कि चारों वेदों के एक लाख मंत्र हैं, उनमें कर्म-काण्ड परक अस्सी हजार, उपासना काण्ड परक सोलह हजार तथा ज्ञान

काण्ड परक चार हजार श्रुतियाँ हैं । अतः ज्ञानकाण्ड परक श्रुतियों का उपयोग शिखासूत्र रहित संन्यासी भी करते हैं । अतः उनको छोड़कर शेष छियानबें हजार श्रुतियों का ही यज्ञोपवीत में समावेश किया गया है । अतः छियानवे अंगुल के चौगुना परिमाण का सूत्र ही यज्ञोपवीत के लिए विहित है ।

अथवा मनुष्य की लम्बाई (८४) अंगुल की होती है, देवताओं की छियानवे अंगुल होती है अतः देवताओं के मान से सूत्र को देवस्वरूपत्व मानकर सूत्र की गणना की जाती है ।

क्योंकि मनुष्य कभी परिस्थिति बस सम्पूर्ण कर्म सम्पन्न करने में समर्थ नहीं होते तो अपने अंगुल के प्रमाण से यज्ञोपवीत धारण करने वाला चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण आदि के कष्टों के तो अनुभव करेगा ही । अतः वह कष्ट न हो इसलिए देवताओं की नाप से ही यज्ञोपवीत का निर्माण होता है । जिससे उसको धारण करने वाला देवताओं के बल को भी प्राप्त करने में सक्षम होवे ।

अन्य अभिप्राय यह भी है वेदमाता गायत्री चौबीस अक्षर वाली होती है । उनसे उत्पन्न चार वेद हैं । अतः चारों वेदों में व्याप्त चौबीस अक्षर वाली गायत्री ९६वें हजार मंत्रों से प्रत्येक वेद को चार बार पढ़ा गया इसीलिए चौगुना करने से उतने अक्षरों से युक्त हो गया । कहा भी गया है ।

''चतुर्वेदिषु गायत्री चतुर्विंशतिकाऽक्षरा ।
तस्माच्चतुर्गुणं कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत्'' ।

अपरोभावश्च- **''तिथिवारञ्च नक्षत्रं तत्ववेदगुणान्वितम् ।**
कालत्रयञ्च मासाश्च ब्रह्मसूत्रं हि षणणवम् ॥''

अर्थात् प्रतिपदादि तिथियां १५, वार ७, नक्षत्र २७, तत्व २५, वेद ४, गुण ३, सत्व, रज तम, इति, भूत भविस्यत् वर्तमान इस प्रकार ३ काल और बारह महीनों को मिलाकर ९६ की संख्या होती है । सूत्र को तैयार कर उसे तीन लड़ का बना लें, पुनः उस तीन लड़ को बँटें, इस प्रकार नवतंतुवाला सूत्र तैयार हो जायेगा । कहा भी गया है यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्रेण नवतान्तवम्'' ।

''ॐ कारोऽग्निश्च नागश्च सोमः पितृ-प्रजापति ।

वायुः सूर्यश्च शर्वश्च तन्तुदेवा अमी नव ।।''

ओंकार अग्नि, नाग, चन्द्रमा, पितृगण प्रजापति वायु सूर्य और शिव ये तंतुओं के नव देवता है । उसी प्रकार इन नवों देवों का यज्ञोपवीत में न्यास करने के लिए यज्ञोपवीत को दोनों हाथों की कनिष्ठिका और अंगूठे के बीच में रखकर निम्नलिखित मंत्रों को बोलते हैं-

१. ओं ओकार को प्रथम तन्तु में न्यास करता हूँ	१. प्रणव और ब्रह्मा के निवास की भावना करें ।
२. अग्नि को दूसरे प्रथम तन्तु में न्यास करता हूँ	२. तेज के प्रदाता अग्नि की भावना करे ।
३. शेषनाग को तीसरे तन्तु में न्यास करता हूँ ।	३. शेष नामक नाग से धैर्य और स्थिरता प्रदान करने वाले चन्द्रमा की भावना करें ।
४. चन्द्रमा के ४ तन्तु में न्यास करता हूँ ।	४. सर्व प्रियत्व गुण को प्रदान करने वाले चन्द्रमा की भावना करें ।
५. विद्वानों को ५ तन्तु में न्यास करता हूँ ।	५. स्नेहसुशीलता सद्भावना देने वाले विद्वानों की भावना करें ।
६. प्रजापति ब्रह्मा की ६ तन्तु में न्यास करता हूँ ।	६. प्रजा का पालन-पोषण करने की शक्ति प्रदान करने वाले ब्रह्मा की भावना करें ।
७. वायु को सातवें तन्तु में न्यास करता हूँ ।	७. अतुल बल का प्रदान करने वाले वायु की भावना करें ।
८. सूर्य भगवान् को ८ वें तन्तु में न्यास करता हूँ ।	८. प्रकाश को प्रदान करने वाले सूर्य भगवान की भावना करें ।

९. शिव जी को नवें तन्तु में न्यास करताहूँ -तपोबल देने की भावना करें ।

यज्ञोपवीत को त्रिगुणित करने पर तीन तन्तु होते हैं, उनका भाव (छान्दोग्य अ. ४ खण्ड १७ नं. १-४) "प्रजापयति लोकानभ्यतपत्" प्रजापति

तीनों लोकों को प्रभावित करते हैं । इस प्रकार जैसे त्रिलोकी में तीन लोकों का मण्डल होता है, और तीन ही गुण होते हैं- यथा पृथ्वीमण्डल, अन्तरिक्षमण्डल, व्योममण्डल (सूर्य मण्डल) इसी प्रकार सतो गुण, रजोगुण, तमोगुण, इति । इस प्रकार कहे गये मण्डलों के सार तत्त्व को ग्रहण करने के पश्चात् गुणों से सृष्टि-चक्र चलता है । जैसे पृथ्वी-लोक का सार अग्नि, अन्तरिक्ष-लोक का सार वायु, दिवि-लोक का सार सूर्य । इस प्रकार तीन ही अग्नियां हैं, अग्नि, वायु, आदित्य, इन्हीं तीनों गुणों से ही प्रकट हुए । इसी प्रकार अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से सामवेद ये तीनों वेद प्रकट हुए । तत् पश्चात् ऋग्वेद से 'भू' यजुर्वेद से 'भुवः' सामवेद से 'स्वः' ये तीनों लोक वा तीनों व्याहृतियाँ प्रकट हुईं । इस प्रकार तीन-तीन से ही तीनों लोक, तीनों देव, तीनों वेद और तीनों व्याहृतियाँ उत्पन्न हुई ।

अतः यज्ञ का क्रम इसी प्रकार से तीनों लोकों का तीनों मण्डलों तीनों देवों, तीनों व्याहृतियों का प्रतीकभूत यज्ञ-सूत्र है । तीनों गुण यज्ञोपवीत में विद्यमान रहते हैं । यज्ञ का विधान करने वाले तीन सरोवर हैं । जिनसे याज्ञिक कार्यक्रम का विस्तार होता है । अतः उपरोक्त समूह का ही यज्ञोपवीत नाम है । तीन ही अग्नियाँ होती हैं । गार्हपत्य अग्नि, दक्षिणाग्नि और आहवनीय नामक अग्नि, इसी के प्रतीक तीन सर हैं- ब्रह्मा, विष्णु और महेश । ये तीनों सृष्टि, स्थिति एवं संहार को करने वाले त्रिदेव हैं जिनके प्रतीक रूप तीन ग्रन्थियाँ यज्ञोपवीत के मस्तक में होती हैं । (यथा ब्रह्मग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि एवं शिव ग्रन्थि ।) "अमृतं क्षेममभयम् त्रिमूर्ध्नोधायि मूर्धषु" इस प्रमाण से ग्रन्थियों में ही मस्तक माना गया है । "अमृतम् क्षेमम् अभयम्" इस प्रकार की भावना तीनों ग्रन्थियों में है ।

यज्ञोपवीत का दूसरा नाम ब्रह्मसूत्र है । अतः ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप होने से "सत्, चित्, आनन्द रूप तीन सर हैं ।"

अथवा जड़, जीव, अन्तर्यामी रूप तत्त्व त्रय के प्रतीक तीनों हैं । दूसरे शब्दों में क्षर-अक्षर अव्यय पुरुष रूप तीनों हैं अथवा चित्, अचित् और ईश्वर इस प्रकार लोकों का सभी तत्त्वों का, वेदों का, व्याहृतियों, देवताओं, गुणों, यज्ञ अग्नियों आदि का तेजपुञ्ज स्वरूप वेद ही यज्ञोपवीत हैं । द्विज लोग इसी से द्विजत्व को प्राप्त होते हैं । जन्म से ही तीनों ऋणों का भार सिर पर बंध जाता है) "देवऋण, ऋषिऋण और पितृ ऋण", अतः

ब्रह्मचर्य से ऋषि ऋण से मुक्ति होती है (ब्रह्मचर्य पूर्वक स्वाध्याय अर्थात् ब्रह्मचर्य आश्रम से) यज्ञ से देवऋण से उऋण होते हैं, एवं गृहस्थ आश्रम का भलीभाँति निर्वाह करते हुए सत्सन्तानों से पितरों के ऋण से उऋण होते हैं । अतः समस्त कामनाओं को सम्पन्न करने वाला यज्ञोपवीत ही है ।

यज्ञोपवीतधारी ब्रह्मचारियों को नित्य त्रिकाल संन्ध्या और अग्निहोत्र की उपासना करनी चाहिए । हे सौम्य ! ब्रह्मचर्य ही तपस्या है, इसी से ही कायिक तप की सिद्धि होती है । सत्य भाषण और मित भाषण वाणी का तप है । जप से इन्द्रियों का तप होता है । मानसिक वृत्तियों के जप से अर्थात् विषयों से चितवृत्ति को रोकने से मानस तप की सिद्धि होती है । इस तरह तीन प्रकार के कायिक, वाचिक, मानसिक तप सिद्धि के प्रतीक तीन ग्रन्थियाँ या त्रिगुणित तन्तु हैं । अथवा "कर्म, ज्ञान, उपासना" ये तीन वेद के काण्ड हैं । (यथा कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड) इनका भी प्रतिनिधित्व यज्ञोपवीत करता है । अतः अग्नि की उपासना तेज का बल, वायु की उपासना से वीर्य का बल, सूर्य की उपासना से आयु का बल ब्रह्मचारी को प्राप्त होता है । अतः सर्वदा इसी प्रकार से ध्यान करना चाहिए कि ब्रह्मा के द्वारा निर्मित त्रिगुणात्मक (त्रिसर) पश्चात् विष्णु के द्वारा त्रिगुणात्मक, त्रिसरात्मक किया गया । तत्पश्चात् शिव के द्वारा गाँठ ग्रन्थि दी गयी तदनन्तर तेजोमय यज्ञ सूत्र को द्विजन्मा ब्राह्मण बटु धारण करता है ।

और आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश दिया । हे सौम्य सृष्टि से पहले एकमात्र सद् ब्रह्म ही था । उसने विचार किया कि बहुत हो जाऊँ । पश्चात् उसने तेज को उत्पन्न किया । फिर उस तेज ने ईक्षण की मैं नाना प्रकार से उत्पन्न होऊँ । तब उन्होंने जल को उत्पन्न किया मैं बहुत रूप से उत्पन्न हो जाऊँ, तब उन्होंने अन्न को उत्पन्न किया (अर्थात् अन्नादि के अधिष्ठान रूप पृथ्वी का सृजन किया, जल ही अन्न को उत्पन्न करते हैं) इसलिये जहाँ अधिक वर्षा होती है वहाँ अधिक अन्न उत्पन्न होता है । जल से ही अन्नाद्य उत्पन्न होते हैं अर्थात् (अन्न ग्रहण करने वाले प्राणी) ।

अतः सृष्टि के पूर्व सद्ब्रह्म ही था । वो सृष्टि करने की इच्छा से वही परमात्मा तेज (आदित्य या अग्नि) की रचना की, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी को प्रकट किया, इस प्रकार इन तीनों का प्रतीकभूत ही तीन सूत्र वाला यज्ञोपवीत है । छान्दोग्य अ. ६ खंड ३ मंत्र ३-४, इसी प्रकार

"सेयंदेवतैक्षत तासां त्रिवृत मेकैकां करवाणीति त्रिबृत्कृता:" तीनों एक दूसरे से मिलाने से तेज, जल, पृथ्वी, वेदान्त की पंचीकरण प्रक्रिया के अनुसार त्रिवृत होते हैं, उसी का प्रतीक तीन सर हैं एक-एक सर (सूत्र) में त्रिवृत हुए भूतों (अग्नि, जल, पृथ्वी) तीन-तीन सूत्र होते हैं। अर्थात् तेज अन्न रूप यज्ञोपवीत है। अथवा आदि सृष्टि तीन प्रकार की थी, ऋषिरूप, दैवमयी, मानवमयी इस प्रकार इसके प्रतीक तीन सर हैं। इस प्रकार शरीर के सत्रह तत्त्वों के अनुरूप यज्ञोपवीत में सत्रह भावनायें होती हैं।

"देव कर्माणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम्।"

(मनुस्मृ० अ०३ श्लो० ७५)

मन्त्रः- **"त्रयः पोषास्त्रिवृत्ति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन।**
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्॥"

दैव कर्म में प्रयुक्त किया गया यज्ञोपवीत चराचर का भरण करता है। मंत्र- इस प्रकार यज्ञोपवीतधारी उपासक के घर में भरण पोषण करने वाले प्रभु-परमात्मा अन्न, दूध, घी की भरमार करते हैं। पशु और पुरुषों की बुद्धि के साथ समृद्धि को बढ़ाते हैं, तथा उसको चिर स्थाई करते हैं। यह यज्ञोपवीत का स्थूल फल है सूक्ष्म फल के रूप में स्वस्ति, कल्याण श्रद्धा मेधा यश, प्रज्ञा, विद्या, बुद्धि, श्री और बल को प्रदान करते हैं। आयुष्य, तेज, आरोग्य आदि बहुत सद्गुणों को प्रदान करते हैं। इसे बहुत सारे लौकिक-अलौकिक यज्ञोपवीत के द्वारा फलों की प्राप्ति होती है।

हे ब्रह्मचारी रामानन्द अब आप भलीभांति उपदिष्ट हो गये हैं। अत आपको सभी प्रकार से यज्ञोपवीत की पवित्रता की रक्षा करनी है। आश्रम में गुरु के अनुशासन में अप्रमादपूर्वक रहते हुए आश्रमीय नियमों उपनियमों का पालन सभी प्रकार से, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, स्वकीय तपस्यामय कर्मों को पूरा करना। सबकी आत्मा सबके नियन्ता, समस्त आश्रमों के प्रवर्तक, सभी के अन्तर्यामी, सबके धारक, सर्वसाक्षी, सर्वाध्यक्ष पुरुषोत्तम प्रभु श्रीराम आपको सद्बुद्धि, विवेक, मेधा, यश, ब्रह्मचर्य, अपारशक्ति, अमोघ वीर्य, तेज, प्रताप और प्रभाव आपको प्रदान करें। ये मेरी परम मंगलमयी शुभ कामना है। हे वत्स ! आपका कल्याण हो। इति।

इस प्रकार आचार्य के मुख से समस्त शास्त्र सम्मत तत्त्व पूर्ण ज्ञान विज्ञान से युक्त ब्रह्मचर्य यज्ञोपवीत के माहात्म्य को दर्शाते हुए अन्त में ब्रह्मज्ञान से युक्त कहे हुए वचनों को सुनकर ब्रह्मचारी वटु श्री रामानन्द अत्यन्त प्रमुदित अन्त:करण वाले, बड़ी ही श्रद्धा अनुराग और भक्ति से अपने आचार्य के चरणों में प्रणाम कर अपनी श्रद्धा को प्रकट किये ।

तदनन्तर आचार्य अपने बटु को भिक्षा के लिए आज्ञा प्रदान किये । उनकी आज्ञा को स्वीकार कर नवीन यज्ञोपवीत से शोभायमान शरीर वाले, मेखलामृग चर्म से युक्त हाथ में दण्ड कमण्डलु लिए हुए, सुकोमल पैरों में खड़ाऊँ धारण किये हुए धीरे-धीरे चलते हुए ऐसे सुशोभित हुए जैसे भगवान वामन दंड, छत्र, और जल युक्त कमण्डलु को धारण किये सुशोभित होते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के भार से युक्त पृथ्वी को अपने प्रत्येक पदार्पण से दबाते हुए राजावलि की यज्ञशाला में प्रवेश करने को उद्यत होकर प्रवेश किये थे ।

जब वह बटु अपनी माता के पास जाकर ''भवति भिक्षां देहि'' ऐसा कहा, उस समय माता सुशीला ने वैसी भेषभूषा अवस्था को देख साक्षात् वामन अवतार भगवत् स्वरूप के समान अनुभव कर परमानन्द में निमग्न हो हर्षातिरेक से अश्रुधारा बहाती हुई, बाँस से बनी हुई बड़ी टोकरी को भिक्षा सामग्री से भरकर नाना प्रकार की कढ़ाई से युक्त पीले वस्त्र से ढ़ककर पूजा के स्थान पर जलपात्र के साथ रखकर, आये हुए ब्रह्मचारी के मुखारविन्द के दर्शनार्थ लालायित नेत्र वाली माँ, श्री सुशीला जी ने बटु के मस्तक पर कुमकुम का तिलक करके, लायी हुई रत्न की माला, सोने का कुण्डल, कटिसूत्र, केयूर, हँसली आदि आभूषणों को धारण कराकर भिक्षा दी । उस समय भिक्षा ग्रहण करने वाले नवीन ब्रह्मचारी की अलौकिक शोभा को बार-बार देखती हुई, अत्यन्त अनुराग, स्नेह, वात्सल्य आदि भावों से युक्त अन्त:करण वाली श्री सुशीला जी की मानसिक स्थिति किस प्रकार की थी, वह लेखनी या जिह्वा के वर्णन का विषय नहीं हो सकता । उस स्थिति का तो उस समय के प्रत्यक्षदर्शी ही अनुभव कर सके होंगे किन्तु वो भी वर्णन करने में असमर्थ हुए ।

बहुत क्या कहूँ-नवीन ब्रह्मचारी अपूर्व कान्ति को धारण करने वाले मुखचन्द्र की चन्द्रिका पान करने वाले चकोर के समान नेत्रों, और मधुर

सौन्दर्य सुधा का आस्वादन प्राप्त करने वाले सुकृतज्ञ लोग उनके मुखकमल पराग के लिए भँवरे के समान मन वाले दर्शनार्थ आये हुए नागरिक नर-नारी दर्शन पर अपूर्व रस सागर में हिलोरे लेते हुए चित्रलिखित जैसे हो गये ।

बादलों में छिपे हुए चन्द्रमा की चपल किरणों के समान सभामण्डप में जन समुदाय के नेत्रों में चारों तरफ हलचल दिखाई दे रही थी । सभी सभासद आकर, "मैं पहले, मैं पहले, तुम नहीं, तुम नहीं, इस प्रकार कहते हुए परस्पर स्पर्धा करते दौड़ते आगे बढ़ रहे हैं । एक-दूसरे को पीछे कर आगे जाने की दौड़ में कोलाहल कर रहे थे ।

उस समय एकाएक बटुक के अद्भुत चमत्कार के समान दर्शन स्पर्श और उनके वचनामृत श्रवण कर वारुणी पीने के समान मदमस्त सद्भावना से भरे अन्तःकरण वाले भावुक, तत् क्षण प्रभाव को प्रकट करने से बटुक की कान्ति दर्शन से जिनकी गति रूक गयी और वो अपने-अपने स्थान में स्थित हो गये और वे अनुभव करने लगे कि ब्रह्मचारी श्री रामानन्द उनके सामने ही उपस्थित होकर बोल रहे "भवान् भिक्षां ददातु" आप भिक्षा दें । इस प्रकार सभी ने बड़े स्नेह उल्लास और आनन्द से तत्क्षण भिक्षा प्रदान की ।

तत्पश्चात् श्रीरामानन्दजी अत्यन्त विनम्रतापूर्वक धीरे-धीरे गुरु के समीप आकर उन्हें प्रणाम कर उस सम्पूर्ण विशिष्ट भिक्षा की पोटली को गुरु जी को समर्पित कर दिये ।

चिन्तामणि के प्राप्त हो जाने पर, प्राप्त करने वाले की जैसे दरिद्रता एकाएक अनायास ही चली जाती है वैसे ही आचार्य गुरुदेव की सम्पूर्ण दीनता ही दीनता को प्राप्त हो गयी । (अर्थात् वो अत्यन्त सम्पन्न हो गये) इस प्रकार अत्यन्त आनन्द से प्रमुदित आचार्य बटुक श्रीरामानन्दाचार्य को आशीर्वाद की परम्परा से अभिनन्दन कर, उपनयन संस्कार की विधि को सम्पन्न किये ।

श्री पुण्यसदन जी आमन्त्रित अभ्यागतों एवं समस्त ब्राह्मणों, ऋत्वजों का यथायोग्य सभी का पूजन कर वस्त्र, अलंकार, गाय, धन समर्पित कर उनको सम्मानपूर्वक समय से विदा कर दिये ।

ब्रह्मसूत्र-यज्ञोपवीत में १७ भावनायें निहित हैं ।

१. पृथ्वी-अन्तरिक्ष द्यौ (सूर्य) ये मण्डलमय भावना है ।

२. अग्नि, वायु, आदित्य ये अधिष्ठातृ देवतामय भावना (यही सारभूत सर है ।

३. अग्नि, वायु और आदित्य, क्रमशः ऋग्, यजु, साम वेदमयी भावना ।

४. ऋग्, यजु और सामवेदों से भूःभुवः, स्वः लोकमय भावना ।

५. ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण क्रमशः ब्रह्मचर्य, यज्ञ करने एवं गृहस्थ धर्म के पालन से तीनों ऋणों से मुक्ति इस प्रकार ऋणत्रय मुक्ति भावना ।

६. त्रिकालसन्ध्या, अग्निहोत्र कर्त्तव्यबोध के तीन सर इस कर्त्तव्यता की भावना ।

७. गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय ये अग्नि त्रय की भावना ।

८. कायिक, वाचिक, मानसिक तीन स्थितियों की भावना ।

९. कर्म, ज्ञान और उपासना रूप त्रिकाण्ड की भावना ।

१०. सतोगुण, रजो गुण, तमो गुण इस प्रकार तीन गुणों की भावना ।

११. सत्, चित् और आनन्द ये तीन ब्रह्मधर्मों की भावना ।

१२. जड़, जीव अन्तर्यामी इन तीन सरों की भावना ।

१३. क्षर-अक्षर, अव्यय, ब्रह्म इन तीन सरों की भावना ।

१४. ऋषिरूप, देवरूप और मानवरूप त्रिविध सृष्टि की भावना ।

१५. तेज, जल, पृथ्वी रूप भूतसृष्टि ये तीन सर । ये सबके सब त्रिवृतकरण की भावना जिसके फलस्वरूप सत्ययास्ति की वैदिक सिद्धि ।

१६. यज्ञोपवीत की ग्रन्थियों में ब्रह्म के द्वारा अमृत क्षेम अभय की भावना ।

१७. और ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप तीनों ग्रन्थियों में त्रिदेवों की भावना विद्यमान है ।

आठवाँ परिच्छेद

ब्रह्मचर्यव्रत को धारण कर विशिष्ट ब्रह्मतेज से युक्त श्रीरामानन्दाचार्य प्रथम आश्रम में प्रविष्ट हुए । दण्ड कमण्डलु, मेखलामृग चर्म, दुपट्टे से युक्त, ब्रह्मचर्य से उद्दीप्त, भगवान की आराधना के फलस्वरूप भगवद् अनुग्रह से प्रकट नित्यनूतन प्रतिभा से प्रस्फुरित वाग्वैभव से युक्त, अग्निहोत्र के अनुष्ठान से प्राप्त अत्यन्त बढ़ी हुई अद्‌भुत मेधा शक्ति जिसके परिणामस्वरूप श्रवण मात्र से ही वेद के शब्द समुदाय ग्रहण का सामर्थ्य सम्पन्न, पवित्र कर्मों के अनुष्ठान की निपुणता से कर्मठ वृत्ति वाले घर में भी बड़ी ही विशिष्टता से युक्त, महर्षि समुदाय के अनुरूप चरित्र वाले, चारों तरफ पठन पाठन में चतुरता वाली प्रतिभा से विख्यात, जंगल के निवासी मुनिगणों के आश्रम में निवास करने लायक स्वभाव वाले, परम सुशील श्री रामजी के चरणों की सेवा से आनन्दित स्वान्त:करण वाले श्रीरामानन्द अत्यन्त सुशोभित हुए ।

इस प्रकार श्री पुण्यसदन अपने पञ्चवर्षीय पुत्र की प्रतिक्षण वर्धमान प्रतिभा एवं सद्‌गुणों से प्रसन्न होकर सोचने लगे-कि जैसे रूपयौवन सम्पन्ना सुशीला कन्या की शोभा श्वसुर गृह में ही हुआ करती है वैसे ही यह ब्रह्मचारी अपनी प्रतिभा एवं विद्या वैभव के कारण गुरुकुल में ही सुशोभित होगा । अतः प्रशान्त मधुर वातावरण से सुशोभित वटुकुल मण्डित विद्यापीठ में ही इसका रहना श्रेयस्कर है ।

ऐसा अपने पतिदेव का निश्चय जानकर सुशीला ने अपने प्राणनाथ से कहा-चिरकाल की उपासना एवं साधना से प्राप्त इस हृदय के टुकड़े को जो अनुपम है, अपने से अलग करने पर मुझे कितना कष्ट होगा, मैं स्वयं नहीं बता सकती । किन्तु भगवदाराधना से प्राप्त लोकातीत इस पुत्र को महापुरुष के रूप में देखने की मेरी इच्छा है । यह शिव के समान सम्पूर्ण विद्याओं का स्वामी हो, दूसरे बृहस्पति के समान ही विद्वान् हो, वेदव्यास के समान सम्पूर्ण शास्त्रों तथा ज्ञान विज्ञान का भण्डार हो । राम भक्ति का प्रचारक बनकर पाखण्ड का संहार करे । सभी जनों के दुःख को दूर कर आनन्दित करे । सनातन धर्म का प्रचारक, शरणागत संरक्षक, संस्कृति का पोषक

सन्मार्गोंपदेशक तथा परमधीर कर्मवीर बनकर एक अलौकिक मानव बने ऐसी मेरी कामना है ।

अतः हमारे इस नयन गोलक के लिए अपने स्वरूप के अनुरूप ही किसी सुसंस्कृत, धार्मिक एवं ख्याति प्राप्त विद्यापीठ में जहाँ सब प्रकार के साधन सुलभ हो वहीं इस बालक के प्रवेश की व्यवस्था करनी चाहिये ।

इस प्रकार अपनी भवन सौभाग्य लक्ष्मी, सद्‌गुण शीला सुशीला की परामर्शात्मक गम्भीर धीर वाणी को सुनकर प्रसन्न मुख श्री पुण्य सदन आदरपूर्वक प्रस्ताव का समर्थन करते हुये बोलें-

प्रियतमें ! ठीक यही बात मैं भी सोच रहा हूँ सामान्यतः इस भूमण्डल में अनेक विद्यापीठ एवं आश्रम है किन्तु वे सब विशुद्ध सत्व प्रधान नहीं है प्राचीन परम्परानुसार, सनातन धर्म मर्यादा के अनुकूल भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत वाङ्मय के विशुद्ध पोषक अब वे विद्या पीठ नहीं रहे । विकृत म्लेच्छ संस्कार वाले धूर्त्तता और पाखण्ड से आच्छादित वे आश्रम विषकुम्भ पयोमुखम् की भाँति प्रतीत हो रहे हैं । उनका स्वरूप बाहर से कुछ और है भीतर से कुछ और । ऐसे आश्रमों से भारत देश में उपकार और उद्धार की आशा नहीं की जा सकती ।

यदि इन धर्म संस्थाओं से सनातन धर्म एवं मर्यादा की रक्षा हो सकती तो भला श्रीभगवान्राम एवं श्रीकृष्ण के आने की आवश्यकता क्यों पड़ती और न ही भारत देश दुर्भाग्यग्रस्त, त्रस्त समस्त मर्यादा रहित होता । अथवा सुदूरवर्ती म्लेच्छों की अपने मनोऽनुकूल भारतीय धर्म को समूल नष्ट करने की कला में पारंगतों की शिक्षा दीक्षा के प्रचार प्रसार चकाचौंध से संचारित नेत्रों वाले भारतीयों के स्वकीय धर्म मर्यादा आचार का सर्वस्व अपहरण की निकृष्ट नीति कैसे सफल होती ।

इस प्रदेश के निवासी शासकों का ही यह कार्य है ये सभी सदाचारी होते हुए भी दुराचारी हो गये, अपने होकर भी पराये हो गये 'भारतीय संस्कृति' का पोषण करने वाले होकर भी शोषक हो गये हैं । हमारे शिक्षा संस्थानों से प्रतिवर्ष राष्ट्रभक्त, धर्मपरायण, सदाचार, शास्त्रीय मर्यादा के संरक्षक बहुत सारे श्रेष्ठ मनुष्य तैयार होते थे । उन्हीं में इस समय विदेशी शिक्षा दीक्षा से युक्त उसी के अनुकूल आचार विचार वाले होने लगे, आपसी

स्वदेशीय जाति, धर्म, मर्यादा, शुद्धता को छोड़कर उनके संपर्क से उत्पन्न दुर्भावनाओं से भरे हृदय वाले वे निज धर्म, देश मर्यादा पालन रूप धर्म को छोड़ने वाले अपनों के साथ धोखा देना अपने स्वार्थसिद्धि के लिए स्वदेशियों का मूलोच्छेदन करने में निपुण परस्पर ईर्ष्या द्वेष से भरे हुए अपनी आत्मा की कायरता से अपनों का असहयोग, लुटेरापन, धोखाधड़ी आदि निकृष्ट भावनाओं से भरे हुए अन्तःकरण वाले, मानवता के आभूषण शील को त्याग करने वाले लोग उन शिक्षालयों से निकल रहे हैं कितने दुर्भाग्य की बात है ।

विद्या पीठों की यह स्थिति विदेशी शासन के कारण है जब तक भारतीय विद्यापीठ एवं आश्रम हमारे ऋषियों मुनियों के अधिकार में थे, तब तक किसी भी प्रकार की विकृति नहीं आ पाई है । किन्तु जब से म्लेच्छ शासकों का शासन आया और शिक्षालयों को उन्होंने अपने अधिकार में ले लिया, तब से भारतीयों को दास बनाकर अपने अनुकूल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये उन्होंने इसमें परिवर्तन कर लिया है । भारतीय इतिहास को भी उन्होंने परिवर्तित कर अपने अनुकूल मुद्रित कराया ताकि भारत में महापुरूषों की छवि उज्ज्वल न हो सके और भारतीय भी परस्पर द्वेष की भावना रूपी पिशाची के पिंजड़े में पड़कर विषादयुक्त होवें, और फिर कभी भी परस्पर सुहृदयता से न मिलें । उस समय का फैलाया गया विषैला प्रयोग आज भी भारतीयों में समाप्त नहीं हो रहा है तभी से भारतीय संस्कृति का ह्रास प्रारम्भ हुआ, जो आज तक संस्कृति की पूर्ण व्यवस्था को नहीं प्राप्त कर सका ।

अतः रामानन्द के लिये जिस प्रकार के विद्यापीठ की अपेक्षा है, वैसा विद्यापीठ एकमात्र वाराणसी में पञ्चगंगा तट में श्री राघवानन्दाचार्य महाराज जी का है । वे परम नैष्ठिक ब्रह्मचारी, विद्वान्, अद्भुत प्रतिभाशाली एवं तेजस्वी हैं ।

उन्हीं के श्री चरणों में इस बालक के स्वरूप के अनुरूप सब प्रकार की व्यवस्था सम्पन्न हो सकेगी ।

नवां परिच्छेद

आज प्रातः काल से ही दर्शनार्थियों की भीड़ महात्माश्री पुण्य सदन के भवन के सम्मुख एकत्र होने लगी । एक ओर पुरुष समाज तथा दूसरी ओर सौभाग्य की सम्पत्ति से समृद्ध महिलाओं का समूह तीसरी ओर समवयस्क सहचर बाल मित्रों के झुण्ड और अपने हाथों में दोना में सुमन गुच्छों को लेकर मंगल गीत गाने वाली महिलाओं का समूह इस नूतन ब्रह्मचारी की मांगलिक यात्रा की प्रस्थान वेला में वहाँ उपस्थित थे ।

प्रस्थान के समय दर्शनों की उत्सुकता से उपस्थित नर नारी समूह पुष्पाञ्जलियों से पुष्पवृष्टि कर रहा था, मांगलिक गीतों व बाजों के साथ मांगलिक कामनाओं एवं विविध शुभाशीषों तथा सम्मान सदाचार से सभी लोंगों के हृदय को आनन्द देने वाले श्रीरामानन्द ब्रह्मचारी बटु का पुण्यसदन के साथ अभिनन्दन कर रहे थे ।

उसी समय अपने पुत्र के प्रस्थान के अवसर में विद्याध्ययन के लिये बाहर जाने वाले अपने बाहरी हृदय को देखकर नितान्त हर्ष सम्पन्ना, आनन्दाश्रुपरिपूरित लोचना, पुत्र वत्सला सुशीला ने मांगलिक उपचार एवं पूजन किया । ललाट पर कुंकुम तिलक कर पुष्पमाला पहनाकर सफलतासूचक श्रीफल (नारियल को मांगलिक वस्त्र में आवेष्टित कर वटु के हस्त में देकर विविध शुभाशीषों से अपने-नेत्र के तारे-प्यारे बटु का अभिनन्दन कर भुजाओं में भरकर मुख का चुम्बन कर तथा हृदय से लगाकर कहा- वत्स ! आनन्दपूर्वक मंगल प्रस्थान करो । मैं सर्वदा तुम्हारी सफलता के लिये प्रतिदिन प्रभु की आराधना एवं प्रार्थना करती रहूँगी । यद्यपि कोई भी माँ अपने हृदय के टुकड़े को अपने नेत्रों को अपने से अलग नहीं करना चाहती, केवल मोहपाश से घिरी दुराग्रह बस जो स्त्री अपने स्नेह पास में पड़े हुए अपने पुत्र को अकर्मण्य, ज्ञानहीन और कुण्ठित बुद्धिवाला बनाने की कामना करें, नहीं कर सकती, मैं चाहती हूँ कि मेरे पुत्र की कीर्ति विश्व में फैले व ज्ञान विज्ञान से त्रिभुवन को प्रकाशित करे । अपने पुत्र को जगद् वन्दनीय पद पर बैठा हुआ देखना चाहती हूँ अतः तुमको सहर्ष भेजती हुई

संसार की यथार्थता, समस्त लोगों की हृदय की बात जानने वाले सभी प्रकार से अविजित विद्वत्ता अपने स्वरूप के अनुरूप प्राप्त प्रतिष्ठा, प्रकृष्ट गुण की खान, अत्यन्त श्रेष्ठ पुनः अपने भवन में आये हुए विश्वविख्यात पुत्र को देखूँगी । अपने से अभिन्न जाते हुए अन्त:करण का अनुमोदन करूँगी पुनः शीघ्रातिशीघ्र आने के लिए तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो ।

इस प्रकार अपनी माता के द्वारा आज्ञापित श्री रामानन्द श्रद्धापूर्वक जननी के चरणों में प्रणाम कर एवं धैर्य का अवलम्बन करके कहने लगे- माँ तुम्हारे चरणों को स्पर्श करके मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैंने तुम्हारा दूध पिया है, तुम्हारी गोद में इतने दिन तक क्रीड़ा की है । तुम्हारे लालन पालन में ब्रह्मानन्द से भी अधिक आनन्द का अनुभव किया है । गर्भाधान से लेकर अब तक तुमने स्वयं कष्ट सहकर मेरी सुख सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखा है । और मुझे विश्व विपत्ति विनाशक मानव कल्याण कारक बनाने के लिये ही गुरुकुल भेज रही हैं । मेरे वियोग का दुख आपके हृदय में कितना है । यह मैं भली भांति जानता हूँ और वचन देता हूँ, कि स्वप्न में भी तुम्हारे दूध को नही लजाऊँगा । जिससे तुम्हें लज्जित होना पड़े या लोक निन्दित होना पड़े । सभी प्रकार से धर्माचरणरत रहकर नीति-रीति सदाचार एवं सच्चरित्रता का पालन करूँगा । एकमात्र विद्याध्ययन का लक्ष्य रखकर तुम्हारे सत पुत्रत्व का परिचय दूँगा । इस गुरु पदेश को सदैव याद रखूँगा-

''श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखमिति ॥

(मनुस्मृ० २।८)

''वेदों, पुराणों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का पालन करने वाला मानव इस संसार में यश प्राप्त करता है और परलोक में सुख प्राप्त करता है'' जो कुछ आपने कहा है उसका पालन करूँगा । आपके मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष को फलवान् बनाऊँगा । आपकी आशारूपी लता को शीघ्र ही पल्लवित एवं पुष्पि करके दिखाऊँगा । ऐसा कहकर मातृ चरणों में शिर रखकर सम्मुख स्थित मित्र मण्डली को बाल भाषा में स्नेह पूर्वक सम्बोधित कर भी रामानन्द ने प्रसन्न किया । मित्र मण्डली वियोग वेदना से व्यथित थी, और श्री रामानन्द जी के साथ जाना चाहती थी किन्तु श्री रामानन्द ने कहा-

मित्रों ! मैं गुरुकुल में पठनार्थ जा रहा हूँ । जब तक मैं लौटकर न आ जाऊँ, तब तक आप लोग प्रतिदिन यहाँ आकर पुत्र-वत्सला माँ के चरणों की शरण लेते हुये मेरा प्रतिनिधित्व करना । इनके स्नेह की मिठास व मिष्ठान्न प्राप्त करते हुये यहाँ खेलना और इनका मनोरंजन कराना ।

बालकों को सम्बोधित कर जब पिता पुत्र आगे बढ़ने लगे तब पीछे आते हुये नागरिकों के समुदाय को देखकर लोगों ने ऐसा देखा अनुभव किया जैसे वन गमन के अवसर पर भगवान श्री रामचन्द्र जी के पीछे अयोध्या वासियों का समूह आ रहा हो ।

श्री पुण्य सदन ने कहा-बन्धुओं ! अब आप सब बहुत दूर आ चुके हैं । यद्यपि मैं जानता हूँ, आप लोग स्नेह वात्सल्य से पराधीन है एक क्षण के लिये भी अपने हृदयानन्द रामानन्द को अलग नहीं देखना चाहते हैं । किन्तु गन्तव्य यहाँ से बहुत दूर है । सभी को मार्ग में अतीव कष्ट प्राप्त होगा और उससे कोई लाभ भी नहीं है । अतः इस बालक के संरक्षण के लिये मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ । आप सभी सुखपूर्वक लौट जाये ।

इधर की तनिक भी चिन्ता न करना । हमारा विश्वास है कि हम सुखपूर्वक यात्रा करके गन्तव्य तक पहुँच जायेगे । आप सब की शुभकामनायें हमारे आगे-आगे चल रही है । अपने-अपने घरों में रहकर ही प्रभु श्री राम से आप लोग प्रार्थना करे कि आपका रामानन्द संसार में ख्याति प्राप्त विद्वान् बनकर सभी के मनोरथों को पूर्ण करे । जब ऐसी प्रार्थना करने के बाद भी लोग नहीं लौटे ।

तब श्री रामानन्द ने कहा-मैं आप सब के शुभाशीष लेकर ही जा रहा हूँ आप जैसे गुरुजनों का आशीष अत्यधिक शक्तिशाली हुआ करता है । आप सबके आशीर्वाद रूपी कवच से मैं वज्रांग बन चुका हूँ । अतः मार्ग में किसी भी प्रकार की विघ्न बाधा नहीं आ सकती । मेरी प्रार्थना है कि आप लोग सानन्द लौट जाये, और हम लोगों को आगे बढ़ने की आज्ञा दें ।

सभी को विदा करने के बाद अनेक प्रकार की यान सुविधा उपलब्ध होने पर भी गुरु के उपदेश के अनुसार कि- "ब्रह्मचारी को किसी भी सवारी का आश्रय नहीं लेना चाहिये" इस शास्त्र वाक्य के अनुसार कुछ अंगरक्षकों के साथ पिता और पुत्र पैदल ही काशी की और चल पड़े ।

बालक का अभ्यास पादुकाधारण करने का नहीं है ऐसा मानकर प्रकृति ने स्वयं सब प्रकार की अनुकूलता सम्पादित कर थी । भूमि में कोमलता, सूर्य में तापहीनता, वायु में शीतलता मन्दता सौरभ, तथा वनों उपवनों में सर्वत्र वसन्त की मादकता दिखाई पड़ती थी । जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती, वहीं-वहीं विविध वर्णों के नूतन किसलय प्रसून पुञ्ज भँवरों से गुञ्जारित है कोयलें प्रति शाखाओं पर नाच रही हैं इस प्रकार प्रकृति अपनी सभी प्रकार की अनुकूलता से बटु के साथ जनमानस को आनन्दित करती हुई मार्ग गमन में उत्साह को बढ़ाती हुई बहुत दूरी के रास्ते की थकावट को दूर करती हुई नवीन नवीन उल्लास संवर्द्धन करती हुई बड़ा ही सुखमय वातावरण अनुभव में ला रही है ब्रह्मचारी रामानन्द ने मार्ग में सुख का अनुभव किया ।

धीरे-धीरे चलते हुये मन मोहिनी वन की श्री का अवलोकन करते हुये, रास्ते के फलपुष्पादि के द्वारा श्री रामानन्द ब्रह्मचारी का शृंगार करते हुए विविध तीर्थों से सम्बन्धित गुरुकुल में निवास से सम्बन्धित बहुत सारे ऋषि गणों व शिष्यों की प्रचलित अलौकिक ज्ञान विज्ञान में युक्त कथाओं को कहते और सुनते हँसते-हँसाते हुये दिन के तीसरे प्रहर में एक पर्वतीय नदी के सुरम्य तट पर पहुँच गये ।

सर्व सम्पति से विश्राम निश्चित हुआ सायंकालीन सन्ध्योपासना का समय आ गया है । यह सुन्दर स्थान है ऐसा निश्चित कर वहीं विश्राम किया ।

दसवाँ परिच्छेद

इस समय म्लेच्छ शासन के अत्याचार से निज सनातन परम्परा के आचार विचार ध्वस्त हो गये । समस्त पुण्यों के अनुरूप वर्णाश्रमों के व्यवहार को उदरम्भरी लोगों ने छिन्न-भिन्न कर दिया । विशाल हिन्दू समुदाय निर्जन गिरि कन्दरों में अपने को छुपाकर जैसे तैसे अपने दिनों को व्यतीत कर रहे थे । जिस पर्वतीय प्रान्त में, सघन वृक्षों से परिवेष्टित भूभाग में अपने पिता जी के साथ श्री रामानन्द ने अपना विश्राम स्थल बनाया था वह ऐसे हतभाग्यजनों किन्तु सदाचार परायण मुनिकल्प सनातन धर्मावलम्बी अपने धर्म के पालन में जन्म की सफलता को मानने वाले हिन्दू महापुरुषों की सुखद बस्ती थी जो कि म्लेच्छ शासकों के अत्याचारों से पीड़ित होकर दुष्ट दुश्शासन के द्वारा वस्त्र और केशों को खींची जा रही द्रुपद कुमारी श्रीद्रोपदी के समान ध्वस्त वेष वाली प्रतीत हो रही थी । जिसको सारे सौभाग्य कुटिल कुशासकों के क्रूर कृत्यों की कृत्यारूपी अग्नि की ज्वालाओं से ग्रसित होकर केवल नाम मात्र बचा था, जिसके सौन्दर्य और सौभाग्यरूपी खजाने को क्रोध के कारण लाल-लाल हुए अकरुणों के द्वारा समाप्त कर दिया गया था ऐसे लोग अपने को छिपाकर पर्वतीय गुफाओं में निवास कर रहे थे ।

वे लोग रात्रि के समय में अपने वेष परिवर्तित कर कन्दमूलादि को किसी प्रकार प्राप्त कर के जीविका चला रहे थे । उस निर्जन शरण रहित सर्पों एवं ऊलूकों के निवास भूत जंगल में अपने-अपने घर से छुपे हुए वेष में बाहर आकर किसी नवीन जन समुदाय के निवास को देखकर बड़े आश्चर्यचकित एवं सशंकित होकर दूर से ही वर्तमान समय में लोकोत्तर धार्मिक धर्म धुरन्धरों के द्वारा सन्ध्योपासन अग्निहोत्र की सुगन्ध से समस्त दुरित दूर कर दिये गये हैं विशुद्ध गाय के घी की दिव्य गन्ध की फैली सुगन्ध से मानो आध्यात्मिक शक्ति समूह का विस्तार किया गया है । उन लोगों ने उत्साह बल एवं पौरुष से सम्पन्न साक्षात् भगवान श्री राम का ही स्वरूप धारण कर दण्डकारण्य में निवास करने वाले श्री रामानन्द को उन्हीं का प्रतिरूप मानकर धीरे-धीरे परिचय एवं विश्वास हो जाने के कारण

अपने-अपने हाथों में कन्दमूल फलादि उपहार लेकर सत्संग का आनन्द प्राप्त करने हेतु वहाँ आ गये ।

चारों तरफ से आनन्द से पूरित अपने घर के समान उनकी शिष्टता स्नेह परम्परा एवं सत्कार पद्धति से प्रभावित होकर बालक होते हुये भी श्री रामानन्द उन सबको मधुर वचनों से सम्बोधित करने लगे । आप सभी वस्तुतः सजीव हिन्दु धर्म के प्रतीक है जो कि सिंह व्याघ्रादिक के भय से युक्त, निर्भीक भाव से इस निर्जन वन में दुष्ट म्लेच्छों के अत्याचारों से सन्तप्त होकर भी खरे स्वर्ण के समान सुशोभित है । आश्रम की मर्यादा का संरक्षण कर रहे हैं । यह पुण्य प्रदेश धन्य है । हम भी धन्य हैं जो कि आप लोगों के साथ समागम और सत्संग का लाभ उठा रहे हैं । विशेष रूप से ऐसी सत्कार की दृढ़ धारणा प्रशंसनीय है । हमें गर्व हैं कि ऐसे दुरुह संकट के समय में भी आप लोग वस्त्र एवं आवास से रहित होते हुये भी परम्परागत, धर्मानुकूल अतिथि सत्कार की मानव मर्यादा का पालन कर रहे हैं आप जैसे नर रत्नों का जीवन ही सामान्य जनों के लिये आदर्श उदाहरण है ।

इस समय भारत का यह दुर्भाग्य है कि यहाँ पर लोग मोह से लोभ से या भय से स्वार्थान्ध होकर विधर्मी बन रहे हैं । म्लेच्छ शासकों की दासता स्वीकार कर रहे हैं पर लोक एवं पूर्वजन्म में उनका विश्वास नहीं रह गया है अपना कल्याण नहीं देख पा रहे हैं । मात्र उदर पोषण को ही अपना पुरुषार्थ मान रहे हैं प्रत्येक समय केवल अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए ही प्रयत्न करते हैं अपने सदाचार रूपी अश्व की लगाम स्वयं ही विधर्मियों के हाथ में सौंपते हैं विधर्मियों के द्वारा अपने कुलवधू जनों की मान मर्यादा का मानमर्दन देखते हुए भी नहीं देखते हैं ।

इन दुर्भागी नीच विरुद्ध आचरण करने वाले भारतीयों के द्वारा क्या हो सकता है जो ऐसे विरुद्ध अत्याचारियों की शरण ले रहे हैं विधर्मियों के द्वारा चलाये गये धर्माभास के पथ का अनुगमन करने में लगे हुए अपनी सनातन धर्म की मर्यादा का त्याग कर देने वालों के द्वारा देश का कुछ कल्याण होगा यह आशा दुराशामात्र है ।

जब तक इनकी दुर्बुद्धि की शुद्धि नहीं की जायेगी तब तक दुष्ट दुश्शासक म्लेच्छ दुःशासन के कुचक्र का मण्डल नहीं तोड़ा जा सकता ।

हे राजन् ! आशा बड़ी बलवान होती है इस प्रसिद्धि का अनुसरण करके हम लोगों को प्रयत्न करना नहीं छोड़ना चाहिए । पूरे शरीर में व्याप्त रोग दुःसाध्य नहीं हुआ है इस समय भी आप जैसे भावुक लोगों से भारत एवं भारतीय जनता के विकास के लिए भव्य भावना की आशा है पुनः भारत में प्राकृतिक स्थिति होगी ।

सभी प्रकार से विपरीत होने पर भी चारों तरफ से उठे हुए भयावह प्रतिकूल बादलों की घटाटोपरूपी क्रोध से कम्पित शरीर होने पर भी इस समय दुर्जन के दुःसंग से उत्पन्न अपूर्व दुर्दशा से दुर्गति के विशाल गड्ढे में पड़े हुए देश के उत्थान के लिए सद्भावना से प्रकाशित अन्तःकरण वाले आप जैसे धर्मवीरों का इस प्रकार संस्कृति रक्षा धुरन्धरों के विद्यमान रहते हुए त्रिकाल में भी शुभ की आशा का विनाश नहीं हो सकता ।

जैसे आकाश मण्डल में मन्द-मन्द प्रकाशित होते हुए अत्यन्त अल्पकान्ति वाले जुगनू (खद्योतों) के जैसे तारागणों का प्रकाश तत्क्षण उदित चन्द्रमा की शीतल सुखद प्रकाश से मन्द हो जाता है उसी प्रकार सनातन धर्म के तेज मण्डल से युक्त सदाचार रूपी सूर्य से प्रकाशित लोगों के सामने लाखों की संख्या होने पर भी विधर्म से अन्धे हुए उल्लू के बच्चे स्वयं ही परास्त हो जायेंगे ।

अपार करूणासागर नित्य साकेत बिहारी श्री जानकीनाथ भगवान् शीघ्र ही धर्मप्राण प्रजा का करुण क्रन्दन सुनेंगे और अविलम्ब दानवता को धारण करने वाले दुर्विनितों का विनाश करेंगे । क्योंकि स्वयं भगवान् ने प्रतिज्ञा की है कि-

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।''

हे अर्जुन ! पृथिवी पर जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब मैं अपने को प्रकट करता हूँ इति । तो वह करुणासागर सकल जगत के आधार धर्म प्राण प्रजा के प्राणाधार प्रेम धन के खजाना, अपने भक्तों की रक्षा में समर्थ दुष्ट दुर्जन दुःशासनों के दमन चक्र से छिन्न-भिन्न अंग वालों के लिए, हमेशा अभय देने वाले चरण शरण में आने वालों के लिए रक्षा करने के लिए क्यों नहीं अवतार लेंगे अर्थात् अवश्य लेंगे ।

अतः हम सभी का यही कर्तव्य है कि धर्म की रक्षा करने के लिए सद्धर्म प्रचारार्थ, अधर्म के शमनार्थ, भारत में भारतीय संस्कृति के सम्यक् उद्धारार्थ हम सभी प्रतिदिन एकत्र होकर अत्यन्त लगन के साथ आन्तरिक भावना के साथ एकाग्रचित्त से भगवान् की प्रार्थना करें।

इस प्रकार पञ्चवर्षीय इस अद्भुत बालक के मुखकमल से निस्सृत अलौकिक उपदेशामृत को कर्ण पुटों से पान कर संतृप्त एवं आश्चर्य चकित सुन्दर चातक के समान नेत्र वाले अपनी श्रीरामानन्द के मुखचन्द्र की चन्द्रिकाओं का अपने उत्फुल्ल नेत्र रूपी चातक की चंचल चोंचों से पान करते हुए प्रहरी के समान वे सब बालक को भगवान का ही अंश समझ कर रात्रि भर जगकर वहीं उनकी रक्षा करते हुये उस रात्रि को अतिवाहित किया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

तदनन्तर प्रात:काल में स्नान सन्ध्योपासना अग्निहोत्रादि नित्यनियमों से निवृत्त होकर धीरे-धीरे श्रीरामानन्द आगे बढ़ रहे थे, और उनकी सरल वचन पान सुधा से तृप्त अन्तः करण वाले लोग उनका अनुगमन कर रहे थे। मध्याह्न में सूर्य भगवान् की प्रचण्ड किरणों से तपी हुई बालुका जिस पर चलना सर्वथा कष्ट कर है उस तप्त बालुकामय पथ पर चलते हुये माध्यन्दिनी संध्या की उपासना हेतु किसी सजल प्रदेश में विश्राम करके जब सूर्य नारायण की प्रखर किरणों का ताप कुछ कम हो गया, तब वहाँ से पुनः चल पड़े। सायं सन्ध्योपासना का समय हो जाने पर किसी बस्ती के निकट प्रवाहमान नदी के तट पर रात्रि विश्राम की व्यवस्था सुनिश्चित की।

वहीं एक ओर मधुर जल से प्रपूरित एक सुन्दर कूप भी था। जहाँ निरन्तर ग्रामवासिनी महिलाओं के झुण्ड के झुण्ड जलाहरण हेतु आते रहते थे। जहाँ पर ग्राम बन्धुओं का समूह सुशोभित हो रहा था उस जगह जिनके दर्शन के लालायित नेत्र वाली अत्यन्त कमनीय कामिनियाँ पानी लेने के बहाने भूलोक नागलोक की रमणियों के विलक्षण प्रतिबिम्ब के समान, अभूतपूर्व दर्शनीयतम के दर्शन की लालसा से मेला सा लगा रहता था जिससे वह कूप अत्यन्त सुशोभित हुआ।

वहाँ नाना प्रकार की वेषभूषा से सजी दो-दो घड़ों से सुशोभित उत्तम शरीर वाली व पायलों के झंकार एवं कूप के पानी में डूबते घड़ों की गुड़गुड़ाहट की आवाज से मिश्रित इन लोगों की आवाज सांकेतिक वार्तालाप के समान अपूर्व आनन्द देने में प्रवीण अन्तरंगमित्र के समान अथवा प्रेम सम्राट् के समान वह सुन्दर कुंआँ सुशोभित हो रहा था।

उसी समय आपस में सरस वार्तालाप करती हुई रसिक जनों के मन को अपनी तरफ आकृष्ट करती हुई पानिहारिनियों की दृष्टि सहसा अद्भुत आभा से विभासित सहस्त्र दल कमल के समान सुशोभित सुन्दर मुख जिसने कामदेव की छवि को जीत लिया है ऐसे आनन्द को प्रकाशित करने वाले दर्शनीय श्रीरामानन्द पर रसग्राहिणी रमणीय आकर्षक दृष्टि पड़ी। दृष्टिपात

मात्र से समर्पित चित्ता होकर उनके मुखारविन्द के दर्शन से उन्मत्त हुई प्रमदायें बार-बार निर्निमेष नेत्रों से दर्शन करती हुई भी तृप्त नहीं हुई अपितु मदोन्मत्त के समान अपने सिर पर जलपूरित घड़ों एवं प्रेमपूरित हृदय से युक्त वो अपने घर के लिए चलने के लिए एक कदम भी सक्षम नहीं हुई । जैसे षोडश कलाओं से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल को देखकर उसकी किरणों से फैलाई गई सुधा का पान करने के लिए चकोरियाँ बार-बार चन्द्र किरणों के रसास्वादन में प्रवीण कभी भी पूर्णता को नहीं प्राप्त होती हैं वैसे ही उस समय भी वो उत्तम रमणियाँ उनके मुख रूपी चुम्बक की तरह आकर्षित सूई के समान शरीर वाली हो गई ।

वे सभी बालायें शीघ्र ही अपने-अपने घर पहुँची । घट (कलशों) को यथा स्थान रखा । अपने गृह जनों से नवागन्तुक कमनीय दर्शन वाले नूतन ब्रह्मचारी के दर्शन का प्रबल आग्रह किया । तथा अतिथि स्वरूप देवता के लिये विविध फल पुष्पोहार नैवेद्य आदि के साथ ही दूध, दही, मक्खन मिश्री से पूर्णपात्र लेकर मंगल गीत गाती हुई पुनः उनको अपने नेत्र पथ का पथिक बनाने हेतु वहीं उपस्थित हो गईं । उनके साथ-साथ उनके गृहपति भी दर्शन एवं सत्संग लाभ प्राप्त करने हेतु पहुँच गये । सुन्दर कुल में उत्पन्न होने वाले सौभाग्यशाली लोगों ने अपने हाथों की मालाओं के साथ अनेक प्रकार की उपहार सामग्री श्री रामानन्द जी को समर्पित कर दी ।

श्रीरामानन्द जी ने इन सभी आगन्तुकों को अपने अभूतपूर्व दर्शनानन्द की उपलब्धि से पूर्णता को प्राप्त कराया जिससे वो अपने देह गेह के योग्य समस्त आवश्यक कामनाओं को भूल गये । फिर श्री रामानन्दजी ने स्त्रियों के सहित समस्त जनसमुदाय को हर्षित करने वाली अमृतवाणी से अपने चरण कमलों से निकले मकरन्द के रसास्वादन में कुशल भँवरों के समान आए दर्शनार्थी जनों के समूह को आकर्षित करने वाली, भावुक जनों के लिए हृदयस्पर्शी मधुरातिमधुर गम्भीरतापूर्वक वाणी से ससम्मान उनकी थकान दूर करने के लिए शान्तिपूर्वक बैठने के लिए कहा ।

अपने दर्शनों से बालाओं को पूर्ण काम बनाते हुये श्री रामानन्द ने मधुर वाणी द्वारा ससम्मान उन्हें आसन ग्रहण करने हेतु कहा-तदनन्तर सम्बोधित करते हुये बोले प्रिय बान्धव गण ! इस समय मैं अपने पिता श्री के साथ त्रिपथ विहारिणी पावनी पातक पुञ्जहारिणी भगवती भागीरथी से

अलंकृत सभी घाटों पर अनेक देव मन्दिरों से परिवारित संसार के एक मात्र स्वामी श्री विश्वनाथ से अधिष्ठित नगरी काशी की ओर जा रहा हूँ । वहीं गुरुकुल में विद्या प्राप्ति की कामना से कई रात्रियों को मार्ग में बिताकर गुरुकुल में निवास करने जा रहा हूँ ।

रास्ते में आप लोगों के प्रेमपूरित हृदय के हर्षातिरेक को देखकर, मेरी वाणी द्वारा किसी विशेष वार्ता को सुनने की अभिलाषा को देख मेरे मन में भी सुन्दर उपदेश करने की विशेष प्रवृत्ति हो रही है ।

किन्तु चारों ओर प्रवर्तमान धर्माचरण विरोधिनीं जन प्रवृत्ति का स्मरण कर करके मेरा मन व्यथित हो रहा है मैं अपनी पूर्वपरम्परा के आचार विचार का स्मरण कर रहा हूँ । किन्तु बालक होने के कारण अभी हमारी बुद्धि पूर्णरूप से विकसित नहीं हुई है । और ना ही पूर्ण परिचित हूँ अत: मैं अधिक जन कल्याण विधायक और वरदायक उपदेश देने में तो सक्षम नहीं हूँ किन्तु यह अवश्य कहूँगा कि जिस ज्ञान विज्ञान के बल पर सम्पूर्ण देश या राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर करता है, जिस भारतीय संस्कृति के कारण ही देश उन्नति शिखर पर आरुढ़ हो सकता है । यदि कोई दुष्ट शासक उस संस्कृति, पद्धति एवं सदाचार को पैरों से कुचल रहा हो तो ऐसे दुष्टाशासन का अन्त विश्व विधाता अतिशीघ्र ही करेंगे ।

हिरण्यकशिपु, रावण, कंस, दुर्योधन आदि बहुत से उदाहरण है जिन्होंने विश्व विजय करके अपना अखण्ड साम्राज्य स्थापित किया था और तो और एक बार मृत्यु को भी जीत कर गर्जना किये । किन्तु उन लोगों का भी विश्वव्यापी साम्राज्य दीन दु:खियों की दु:खभरी गरम श्वासों से जलकर नष्ट हो गया था । वे भी यमराज के अतिथि बन गये थे । तो फिर सामान्य मनुष्यो की तो बात ही क्या है ।

क्योंकि धर्म और न्याय की दृष्टि से प्रजापालक राजा होता है । कहा भी गया है कि प्रजा को आनन्द देने से ही राजा कहा जाता है । जनता का पिता कहलाता है जैसे पिता अपने पुत्रों का प्रतिदिन पालन करता है सन्तान के शारीरिक कष्ट को दूर करता है । वैसे ही राजा का पुत्र के समान अपनी प्रजा का पालन करना राजधर्म है जो अपनी प्रजा के लिये सर्वविध सुख साधन प्रस्तुत करते रहते हैं वहीं महान् हैं । उन्हीं का शासन चिरस्थायी हुआ

करता है जैसे प्रभु श्रीराम रात दिन प्रजा की कल्याण कामना का ही चिन्तन किया करते थे ।

"स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥१॥

वे कहते थे-"मुझे स्नेह, दया, अपना सुख और यहाँ तक कि प्राण प्रिया पत्नी सीता को भी यदि प्रजा के सुख के लिये छोड़ना पड़े तो मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा ।"

किन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि हमारे भारत देश में दुर्भाग्य से स्वेच्छाचारी हत्यारे यवनों का ही शासन चल रहा है भारत भूमि पर अत्यन्त सरल स्वभाव वाले देवताओं के समान मनुष्यों पर दानवता को धारण किये अत्यन्त दुःख देने वाली दुःशील दुराचारी राजसत्ता जनता का शोषण करने वाली है जहाँ कहीं भी राजा और प्रजा में परस्पर स्वामी सेवक भाव का दर्शन नहीं हो रहा है तथा न ही पालक पालनीय भाव का संचार दिख रहा है न तो पिता पुत्रवत् आत्मीयता और न ही स्नेह वात्सल्य आदि व्यवहार दिखाई देता है अपितु प्रतिदिन इसके विपरीत किसी न किसी बहाने से प्रजा पर दुराचारियों के अत्याचार होते रहते हैं तथा चारों ओर लुटेरों की लूटपाट फैल रही है कर (टैक्स) के बहाने से जनता की समस्त सम्पत्ति का हरण किया जा रहा है । रात दिन प्रजा के द्रव्यरूपी रक्त को चूषा जा रहा है ।

इन शासकों में लेशमात्र भी मानवीय गुण नहीं है और न ही न्याय व धर्म के साथ इनका कोई सम्बन्ध है तथा न तो कहीं सुरक्षा का प्रबन्ध ही है अपि तु सत्ताधारियों के द्वारा परस्पर विद्वेष बढ़ाकर आपसी वैमनस्य के विष को फैलाया जा रहा है एवं अधिक से अधिक लाभ वसूला जा रहा है ।

परमपावनी इस भारत भूमि पर भारतीयों के परस्पर वैमनस्यता, विद्रोह और भेदभाव की प्रवृत्ति को देखकर विदेशियों की दुष्टसत्ता का प्रवेश हुआ और तभी से सरल स्वभाववाली भारतीय जनता को लूट लूटकर रसातल में भेजने की प्रवृत्ति हो गई जो अभी भी अपने दुराचार रूपी व्यापार को समाप्त नहीं कर रही है तथा न ही अपनी कुटिल नीति की परम्परा को त्याग रही है तथा न तो अपने अत्याचार के प्रसार से वापस लौट रही है । बन्धुओं ! यह भारतवर्ष भारतीयों की पवित्रतम

मातृभूमि है इस पर तो सभी प्रकार से भारतीयों का ही अधिकार है । धर्म प्राण भारतीय जनता का परम जीवनाधार प्राणों से भी अधिक प्रिय धार्मिक ज्ञान सदैव उत्थान परायण है इसलिए भारत के हानि लाभ के विषय में भारतीयों का ही विचार उचित है हम लोग भारतीय हैं अतः भारत पर हम लोगों का ही जन्म सिद्ध अधिकार है ।

यवन लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए हम लोगों के अधिकारों की उपेक्षा करके, भारत के ऊपर अपनी अखण्ड सत्ता को प्रतिष्ठापित करके अपने मनोरथों को पूरा करने के लिए भोली भाली भारतीय जनता के ऊपर जिन दुराचार अत्याचारों का प्रयोग करके न्याय अथवा अन्याय से जनता को पीड़ित कर अपने लक्ष्य की साधना हेतु ये लोग जो कुछ आचरण कर रहे हैं उससे जनता के अन्तःकरण में रात-दिन प्रज्वलित होने वाली धक-धक करती हुई अग्नि हमेशा उनके हृदय को सन्तप्त करती है दुःखी जनता का असहनीय आन्तरिक सन्ताप विस्फोटक पदार्थ के समान अचानक किसी विप्लव को जन्म देगा और इनकी चकाचौंध बिजली के समान समाप्त कर देगी । चन्द्रमा और तारों से युक्त उड़ती हुई ध्वजा केवल इतिहास के काले पृष्ठों पर काले अक्षरों में लिखी मिलेगी और दुष्ट राज्य का राजचिह्न भी विनाश को प्राप्त होगा ।

रत्नजड़ित सोने की चिड़िया जैसे भारतवर्ष की जगमगाती हुई कीर्ति को लहराता देख बहुत सारे देश विदेशी दुर्बुद्धि युक्त राजा गण चारों तरफ से इसे घेरने के लिए और अपने पैरों से कुचलने की कामना से आये और इसे बार-बार लूटकर चले गये, सैकड़ों बार इसे रसातल में ले जाने की इच्छा से बार-बार प्रयत्न करते रहे, किन्तु इसके एक बाल को भी टेढ़ा करने में सक्षम नहीं हो सके, और ना ही भारत के भाग्य रूपी सूर्य की प्रभा कभी मलीन हुई । यद्यपि समय-समय पर दूर-दूर से आयी घनघोर घटाओं से तिरोहित होकर भी समय से दूर की गई घनघोर घटाओं का अन्धकार कुछ न कर सका और सम्पूर्ण गगन मण्डल पूर्ववत् अपनी आभा से प्रकाशित होता हुआ सदैव देदीप्यमान ही बना रहता है ।

जो हुआ सो हुआ किन्तु हम सभी भारतीय सन्तानों को अब निष्क्रिय और प्रयत्न शून्य नहीं रहना है । यह समय आलस्ययुक्त होकर हाथ पर हाथ रखकर रहने का नहीं है हम लोगों को हमेशा जागरूक होना चाहिए ।

हमें अपने पूर्वजों की मान-मर्यादा का संरक्षण करना है अपनी परम्पराओं से सुरक्षित प्रतिष्ठा, निष्ठा और गौरव पर विशेष ध्यान देना है । आप लोगों के अन्दर भी सम्मान और स्वाभिमान विद्यमान है आप लोगों की धमनियों में भी पूर्वजों जैसा ही रक्त प्रवाहित हो रहा है । जो पहले भीम, अर्जुन आदि में था आप लोगों के वीर बालक भी अभिमन्यु, वृष सेनादि से कम नहीं है अत: अपनी मान मर्यादा की रक्षा के लिए हमेशा ही सावधान रहें ।

संसार में जनता के द्वारा उसी राजसत्ता का सर्वदा सम्मान किया जाता है जो प्रजा का सम्मान करती है और उसकी मान मर्यादा की सर्वदा रक्षा करती है जिसके हृदय में अणुमात्र भी प्रजा के हित की भावना नहीं है ऐसी राजसत्ताओं को तत्क्षण ही धूल धूसरित कर देना चाहिए ऐसा करने से ही प्रजा का गौरव और प्रतिष्ठा सुरक्षित होगी ।

यद्यपि हम लोगों की भी शक्ति सर्वथा सार रहित हो गई है और हम लोग चारों तरफ से नये-नये आगन्तुक दुराचारियों से घिरे हुए हैं और नाना प्रकार के झंझावतों के थपेड़ों से जीर्ण शीर्ण खण्ड-खण्ड अथवा तितर-बितर हो गये हैं यद्यपि अत्यन्त परेशान, निर्बल, अनाथ, अत्यन्त ठण्डे रक्त संचार वाले हम सभी पृथ्वी के भार स्वरूप हो गये हैं फिर भी यदि आपस में एक साथ मिलकर कुछ करने के लिए तैयार हो जायें तो बड़े से बड़े कार्य को कर सकते हैं जैसे अलग-अलग दूर-दूर पड़े हुए तिनके कुछ नहीं कर पाते हैं परन्तु यदि वो एक साथ मिल जाये तो बड़े से बड़े मदमत्त हाथी को भी बांधने में समर्थ होते हैं वैसे ही यदि हम सभी देशवासी सही मन से सुदृढ़ भावना से अपने मान सम्मान की रक्षा के लिए एक होकर समरांगण में संलग्न हो जाये तो कोई भी विश्व की ऐसी शक्ति नहीं होगी जो हम लोगों को रोक सके अथवा हम लोगों के सामने खड़ी हो सके तब इन को पता लगेगा कि भारतीयों के साथ किस प्रकार दातों में पसीना आता है तब इनको देव मन्दिरों, देवमूर्तियों धार्मिक स्थानों के खण्डन और धार्मिक ग्रन्थों और भारतीय संस्कृति के उच्छेदन की क्या कीमत चुकानी पड़ती है यह बालकों का खेल नहीं है जैसा चाहे करें । इसलिए बन्धुओं ! यदि हम लोग अपनी पराधीनता को समाप्त करना चाहते हैं तो शीघ्र ही दुराचारी हत्यारों के मजबूत पिंजरों से अपने को मुक्त करने के लिए और अपनी मातृभूमि को उनसे मुक्त कराने के लिए प्राणों की बाजी लगाकर तैयार हो जायँ । अपनी

भारतीयता और भारत के गौरव प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा के लिए अपनी भुजाओं के बल को संग्राम में दिखाए । अपने कायरपन को छोड़े तभी आप सभी के स्वाभिमान का संरक्षण प्रतिष्ठा का प्रतिष्ठापन होगा और तभी आप की गौरवमयी गाथा की कीर्तिरूपी पताका फहरायेगी ।

इस प्रकार ब्रह्मचारी रामानन्द जी के मुख कमल से निकलती हुई अमृत सरिता का पानकर उसके रसास्वादन से तृप्त मदमत्त के समान समस्त उपस्थित लोग एकाएक श्रीमान् रामानन्द की जय जयकार करने लगे फलतः वृक्ष लताओं में छुपे हुए पक्षी भी कूदने लगे और उनके कुंजने की ध्वनि चारों तरफ फैल गयी एक तरफ भारत माता की जय, दूसरी तरफ सनातन धर्म की जय, अन्यत्र भारतीय वीरों की जय इस प्रकार सम्पूर्ण वातावरण जयकारमय हो गया, इस प्रकार वहाँ के सभा मण्डप और उसके पास समस्त भूतल को जयघोष ने सुशोभित किया ।

जिस ग्राम में अपने पिता के साथ कुछ सेवकों के साथ श्री रामानन्द ठहरे हुये थे, उसी ग्राम में कोई एक मुस्लिम शासन से संचालित जीविका वाला इस्लाम धर्म का प्रचारक 'काजी' भी निवास कर रहा था । वह अपने आतंक एवं प्रभाव से समस्त ग्रामीण परम्पराओं को विनष्ट कर चुका था । अपनी मस्जिद में रहकर मिथ्या मुसलमानी सिद्धियों यन्त्र तन्त्रों का विस्तार करता हुआ रात दिन भोले भाले लोगों को अपने माया जाल में फंसाकर सभी उप यवन शासक अपने वश में करके अपनी महिमा का ही बात-बात में गान करने वाले उस विषयी जीव ने जैसे ही जय जय की ध्वनि सुनी आश्चर्य चकित होकर वह अपने कुछ चाटुकर मुस्लिम सहयोगियों के साथ प्रलय कालीन मेघों के समान गर्जना करता हुआ जैसे महर्षियों के यज्ञ के समय राक्षस लोग भयानक आवाज़ करते हुए आते उसी प्रकार वह अपने चाटुकार के साथ रोषावेश में भरा हुआ आया और वहाँ पर स्थित सभा सदों के मानसिक भावों और तात्कालिक वार्ता को सुनकर अत्यन्त क्रोध में भरकर भूतावेश के समान लाल-लाल नेत्रों वाला चारों तरफ दृष्टिपात करता हुआ अपने अधिकार का प्रदर्शन करने वाली आवाज से गर्जनापूर्व श्री रामानन्द के पास आकर कहने लगा-

क्यों रे बालक ! तु कौन हो कहाँ से आये हो तुम्हारा व्यवसाय क्या है ? यहाँ कैसे आये ? उद्देश्य क्या है ? उपद्रव की बातें क्यों कर रहे हो ?

क्या नहीं जानते हो कि यह शाहंशाह पात शाह का साम्राज्य है उसकी प्रजा मात्र उसी अनुकम्पा पर जी रही है भयभीत होकर भी उनके विरूद्ध आचरण कर रहे हो । मृत्यु के मुख में जाने से तुम्हें तनिक भय नहीं । यह निकृष्ट आचरण व कुचेष्टा अनुचित है अभी तुम बच्चे हो क्रूर दण्ड देने वाले शासन के नियन्त्रण का तुम्हें ज्ञान नहीं है मैं तुम्हें सचेत कर रहा हूँ कि तुम अपनी इस कुप्रवृत्ति को छोड़ दो । अरे बकवादी सुन ! जो व्यक्ति मुस्लिम साम्राज्य विरोधी एक भी शब्द मुख से निकालता है । उसको सीधे मृत्युदण्ड मिलता है । अतः राजनीति में अनभिज्ञ नादान राजनीति में प्रवेश के अयोग्य सर्वथा अदव्य तुम बालक हो यही जानकर छोड़े दे रहा हूँ ।[१] यदि कुछ दिन धरती पर और घूमता हुआ जीवित रहना चाहते हो, तो तत्काल अपनी वाणी में ताला डाल कर मौन रह ।

इस प्रकार जब दुष्ट काजी ने श्रृगाल कौए और कुत्तों जैसी कर्कशवाणी में एवं सिंह की गर्जना जैसे करके बोला तब ब्रह्मचारी रामानन्द के पिता श्री पुण्यसदन जी क्लान्त वदन अपने परिकर सहित सैकड़ों अहित की आशंका से घबड़ाते हुए इसको क्या उत्तर दूँ ? इसी विचार चिन्तन में तल्लीन हो गये, उसी समय मुस्कराते हुए परिहासपूर्वक मन्द एवं गम्भीर स्वर में अपने लोगों को प्रसन्न करते हुए मधुर वाणी में अमृत की वर्षा करते हुए वाक्चातुरीपूर्वक ब्र. रामानन्द ने उपेक्षा पूर्वक कहा-काजी साहब !

आप ही बताइए कि यदि लुटेरे लोग घर लूट रहे हों तो लुटेरों से अपने घर की रक्षा के लिए प्रयत्न करना क्या राजद्रोह है ?

क्या वह शासकों द्वारा शासित होने पर दण्ड का भागी सिद्ध हो पायेगा काजी ने कहा कि कदापि नहीं और किसी तरह से भी नहीं ।

रामानन्द ने पुनः कहा-कोई विदेशी वञ्चक किसी प्रकार से आपका अनुग्रह पात्र बनकर आपके भवन में रहने की प्रार्थना करे और फिर आपका पूरा भवन हठात् अपने अधिकार में कर ले और आपकी उपेक्षा कर दे तब आपका क्या कर्तव्य होना चाहिये ।

---

१. अन्यथा अभी तुरन्त खून का प्यासा मेरा यह खड्ग तुम्हारी गर्दन पर पड़कर उसके खून से अपनी प्यास बुझाता । इसलिये बालक पर दया करके सावधान करता हूँ ।

काजी-क्या होगा ? क्या करेंगे ? यदि ऐसा पूँछ रहे हो तो सुनो-हम उसे लाठियों से पीटकर और पैरों से रौंदकर कान पकड़कर बलपूर्वक घर से बाहर निकाल देंगे । और उसे अच्छी तरह से शिक्षा देंगे ।

फिर ब्रह्मचारी रामानन्द जी ने पूछा कि भगवन् ! यदि उसने मजबूती से वहाँ पैर जमा दिये हो और सर्वाधिकार सम्पन्न हो गया हो तो ।

काजी- यदि ऐसा है तो प्रबलतमशत्रभूत उसको सभी पड़ोसियों एवं पारिवारिक बन्धु बान्धवों की सहायता से तुरन्त उसे निकाल कर दौडाऊँगा ।

श्रीरामानन्द-आप सोचे-यदि कोई विदेशी राजसत्ता आकर आपके देश पर आक्रमण करके उस की मालिक बन जाये तो आपका क्या कर्त्तव्य है । काजी-तो हम उसे शासनाधिकार से वंचित करने का और निकालने का प्रयत्न करेंगे । किसी प्रकार से साम, दान, दण्ड, भेदादि उपायों से अथवा युद्ध करके जान की बाजी लगाकर भी जब-तक देश स्वाधीन नहीं बना लेंगे तब तक रूकेंगे नहीं ।

रामानन्द जी ने आश्चर्यपूर्वक उपहास करते हुए कहा- भगवन् ! आप लोगों के द्वारा उस समय वैसा करना क्या राजद्रोह नहीं होगा ?

तब काजी महोदय ने भी मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा- भगवन् ! आप भी क्या सोचते रहते हैं अरे ! ऐसा करने में कौन सा विद्रोह है ? यदि कोई व्यक्ति दूसरे के हाथ में गये हुए अपने देश को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है तो क्या यह भी विद्रोह है ? यदि ऐसा है तो यह सर्वथा अनुचित है ।

रामानन्द- बहुत अच्छा ! आप ही के मुख से निर्णय हो गया कि हम लोग जो कुछ भी कर रहे हैं वह ठीक है ।

काजी- तत्काल आश्चर्यचकित हो गया और सो कर जगे हुए की तरह सम्भ्रमपूर्वक बोला क्या हुआ ?

श्रीरामानन्द ने कहा-अच्छा हुआ । आपके द्वारा ही निर्णय हो गया । इस समय हमारे देश में विदेशी राजसत्ता ने अधिकार कर रखा है । देश की धर्म मर्यादा, संस्कृति और कुलाचार परम्परा को जड़ से नष्ट करने में ये शासक तुले हुये हैं । इसी दुराशा में कि कभी शायद ये हमारे साथ मानवोचित व्यवहार करें । ऐसा सोचकर हम विरोध नहीं कर पा रहे हैं किन्तु इनसे ऐसी कोई आशा नहीं है अपने देश की रक्षा के लिये ही हम लोग विचार-विमर्श कर रहे हैं । पहले तो यही चाहते हैं कि विरोध भी न बढ़े और मानवता का संबंध व्यवहार भी बना रहे । अन्यथा की स्थिति में हम सब प्राण पण से जुटकर स्वदेश रक्षा हेतु सभी प्रकार के उपाय अपनायेंगे । अब आप ही कहिये-क्या यह राजद्रोह होगा ।

काजी ने कहा-अरे बच्चे ! तुम शरीर से छोटे किन्तु प्रतिभा में बहुत बड़े हो । हमारा दिया हुआ निर्णय हमारे ही मस्तक पर पटक दिया । नहीं यह नहीं हो सकता । अपनी सत्ता के प्रति किसी प्रकार की कुतर्कवार्ता हम नहीं सुनना चाहते । यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं तो अविलम्ब यहाँ से दण्ड कमण्डलु उठाकर प्रस्थान करें, नहीं तो हमारे नौकर आप सब को उठाकर नदी में फेंक देंगे ये केवल मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

श्री रामानन्द ने कहा-नहीं ! यह नहीं हो सकता । मैं ब्रह्मचारी हूँ । रात्रि में नहीं जाऊँगा, व्रतभंग नहीं करूँगा । व्रतभंग के भय से सूर्यास्त के बाद अपने स्थान को भी नहीं छोडूँगा ।

काजी-यदि ऐसा हो तो वाणी में संयम करो ।

श्री रामानन्द -यह भी असम्भव है ।

काजी-तो तुम्हारे प्राणों की कुशल क्षेम नहीं है ।

श्री रामानन्द-उसको भी देखेंगे ।

श्री रामानन्द के मुख से ऐसा निर्भीक उत्तर सुनकर उसके सभी चाटुकार सहयोगी क्रोध में भरकर भयंकर मेघों के समान चारों तरफ से खड्ग हाथ में लेकर दौड़े और रामानन्दादि सभी लोगों को उठाकर नदी में फेंकने के लिये उद्यत हो गये सहसा वे सब जैसे ही रामानन्द के समीप आने लगे अपने आप ठहर गये यहाँ तक आ ही नहीं सके । एकाएक रक्षा के लिये सभी श्री रामानन्द के तपः तेज से जलते हुये चिल्लाने लगे-अरे मरे । अरे जले जा रहे हैं । अल्लाह-अल्लाह तोबा-तोबा बचाओ-बचाओ इस प्रकार जब वे रामानन्द की शपथ खाने लगे, जमीन पर इधर-उधर लौटने लगे दीन हो बार-बार पुकारने लगे । जब वो यवन हत्यारे मरने के डर से श्रद्धापूर्वक श्रीरामानन्द जी की सम्मान के साथ सौगन्ध खाकर उनके सामने नतमस्तक हो गये, तब श्री रामानन्द ने अपनी तेज वृद्धि को शान्त कर लिया । तब सभी श्री रामानन्द के चरणों में मस्तक रखकर इसके लिये वे क्षमा याचना करने लगे । तब मुस्कराते हुए श्रीरामानन्द के द्वारा क्षमा कर दिये जाने पर अपने शासकीय अभिमान को छोड़कर भक्त एवं शान्त बनकर उनके उपदेश रूपी अमृत को श्रद्धापूर्वक ग्रहण करने लगे । ऐसा प्रभाव देखकर सभी विस्मित एवं अत्यधिक श्रद्धान्वित हो गये ।

बारहवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन रात्रि के घनघोर अन्धकार को हटाते हुए सरोवरों में पुष्पों को विकसित करते हुए उत्सुकतायुक्त पूर्व दिशा रूपी कामिनी जो कि सम्पूर्ण रात्रि के घनघोर अन्धकार में विरह जन्य ताप से युक्त हृदयवाली अपनी सौतन स्वरूप पश्चिम दिशा रूपीकामिनी के पास अपने कान्त को जाता देख स्वाभाविक ईर्ष्या से युक्त हृदय वाली अत्यन्त प्रणय कोप से युक्त पूर्व दिशा को अपनी अनुराग युक्त हजारों कोमल किरणों रूपी हाथों से सम्पूर्ण शरीर को अनुरंजित करते हुए एवं आलिंगन करते हुए क्रोध को हरण करते हुए प्रसन्नता युक्त मुख वाली पूर्व दिशा रूपी नायिका के मुख कमल के दन्त स्थानीय पुष्पों को विकसित करते हुए सम्पूर्ण नभ मण्डल को अपनी प्रभा समूह से उद्‌भासित करते हुए पुष्पों को हँसाते हुए भगवान् भास्कर अरुण को आगे करके उदित हो रहे हैं ।

अगले दिन भगवान मरीचि माली (सूर्य) के उदय हो जाने पर पक्षिगण के कलरव से प्रभात वेला का अभिनन्दन हो जाने पर श्री रामानन्द ब्रह्मचारी अपने परिकर सहित पिता श्री के साथ चलने के लिये उद्यत हुये । उस समय वहाँ के सहृदय भक्त शीघ्र ही आकर उनसे रूकने की प्रार्थना करते हुये शिष्टाचार के अनुरूप उनके पैरों में सैकड़ों प्रणामों के द्वारा सम्मान करते हुए उनके सुमधुर वचनामृतों के पान के इच्छुक होत हुए भी उनके विद्याध्ययन में बाधा उपस्थित करने में समर्थ नहीं हो सके । उन सब को मधुरतम वाग्विनोद से सम्मानित हर्षित एवं संतोषित व आह्लादित करते हुये तथा श्री रामानन्द ने स्वदेश, धर्म की मान मर्यादा की रक्षा के लिये पुनः पुनः सम्बोधित करते हुये उनको विदा किया और धीरे-धीरे श्रीरामानन्द जी उनके द्वारा बताये गये मार्ग से प्रस्थान कर रहे थे ।

पण्डित प्रवर श्री पुण्यसदन अपने पुत्र श्री रामानन्द की प्रतिभा एवं पटुता का बारम्बार स्मरण करते रहे और गतरात्रि में घटित तथा प्रत्यक्ष रूप से देखी हुई घटना को सोचते हुये अत्यधिक प्रसन्न हो रहे थे । प्रसन्नता के कारण उन्हें सूर्य की धूप चाँदनी जैसी प्रतीत हो रही थी । इस प्रकार अपने

पिता जी की परमानन्दमयी किसी कल्पना को देखकर पिता श्री के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट कर श्री रामानन्द ने आश्चर्ययुक्त होते हुए कहा-

पिता जी शास्त्रों में सुना जाता है-कि ''विद्या से अमृतत्व की प्राप्ति होती है'' विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे । विद्वान् लोग शरीर से ऊपर उठकर इस लोक में तथा स्वर्गलोक में सब कुछ प्राप्त करके अमरत्व को प्राप्त करते हैं । इसका आशय यह है कि विद्या में ऐसे गुण विद्यमान है जो कि सांसारिक नाशवान् सुखों से भी अधिक उत्कृष्ट हैं । विद्या क्षणिक सुख के प्रलोभनों को दूर कर नित्यानन्द स्वरूप सच्चिदानन्द परब्रह्म से संयोग कराकर अपूर्व आनन्द का अनुभव कराने में समर्थ है । किन्तु मुझे तो सब कुछ इसके विपरीत ही प्रतीत हो रहा है । श्रेष्ठ विद्या सम्पन्न विद्वज्जन भी मूढ़ों की भाँति विवेक एवं विनय विहीन आचरण करते हुये दिखाई पड़ते हैं । जानते हुए भी अनजान के समान भगवद् विमुख होकर संसार में सांसारिक मृगतृष्णा का अनुसरण करते हैं और भयानक अज्ञान रूपी खड्डे में अंधों के समान गिरते हैं ऐसे वो मन्द बुद्धि सुख शान्ति को नहीं प्राप्त करते हैं । इसमें क्या कारण है ?

श्री पुण्यसदन अपने पुत्र के मुख से सारगर्भित हृदय को छूने वाले शास्त्र सम्मत ब्रह्मज्ञानमय प्रश्न को सुनकर और पुत्र के प्रशान्त मुख का अवलोकन करते हुये आनन्द और स्नेहपूर्वक बोले-

''विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य, साधोर्विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥१॥

वत्स ! रामानन्द ! इसमें विद्या का कोई दोष नहीं है । विद्या तो सदैव अपना फल प्रदर्शित करती है यदि सत्पात्र को दी जाती है । और यदि असत्पात्र में विद्या का सन्निवेश किया जाय तो विद्या भी पात्र की प्रवृत्ति के अनुसार सद्यः विकृति को प्राप्त कर लेती है । जैसे विशुद्ध दुग्ध गुणवत्ता से युक्त होता हुआ भी तथा सब प्रकार के प्रकृति सिद्ध मक्खन, पौष्टिकता आदि तत्त्वों से सम्पन्न होकर भी यदि दुष्पात्र में रख दिया जाय तो अम्लादि गुण दूषित उस पात्र के संसर्ग से विकृत हो जायेगा, और अपने स्वरूप का भी परित्याग कर देगा । उसके समस्त गुण उस पात्र के सम्बन्ध से तत् क्षण नष्ट हो जाते हैं । इसी प्रकार विद्या के बारे में भी वही स्थिति है । वही एक

विद्या पात्र भेद से कार्य करती है । अर्थात् वही विद्या खल के पास विवाद का कारण बन जाती है, धन मद (अहंकार) का कारण बन जाता है तथा शारीरिक बल दूसरों को पीड़ा पहुँचाने का कारण बन जाता है किन्तु इसके विपरीत सज्जन के पास की विद्या ज्ञान के लिए धन दान के लिए और शारीरिक बल दूसरों की सहायता के लिए होता है । इस प्रकार पात्रभेद से विद्या, धन और बल की विभिन्न स्थितियाँ होती हैं ।

कौन किस विद्या का अधिकारी है कैसी विद्या किसके लिए उपयोगी होगी इसका भी निर्णय शास्त्रों में किया गया है नियम बनाया गया है अधिकारी का वर्णन है उसी नियम का अनुसरण करते हुए यदि विद्या सुयोग्य अधिकारी का निर्णय करके दी जाती है तो उसका सही उपयोग होने से सत्फल देने वाली कल्याणकारी तथा महत्फल को देने वाली समस्त सम्पत्ति दाता एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाली सिद्ध होती है वो कभी भी बन्ध्या नहीं होती है किन्तु जब से विज्ञान के पात्र (स्थान) इस भारतवर्ष में पश्चिमी विदेशी शासकों के प्रदेश निवासी म्लेच्छ और यवनों की भ्रष्टतम दुष्ट संस्कृति, सुरसा के मुख के समान फैलकर अपने मोह जाल में बांधकर हम भोले भाले विशुद्ध भारतीयों को अपनी चकाचौंध से मन्त्रों को देखने की शक्ति को समाप्त कर स्वच्छन्द मोह जाल में पड़े सभी को अमर्यादित एवं असभ्य संस्कृति ने पंथ भ्रष्टकर दिया है तभी से चारों तरफ नाना प्रकार के अनिष्टों का बाहुल्य हो गया है ।

इस समय सभी लोग अधिकार एवं अनधिकार के प्रश्न को एकदम हटाकर सभी विद्याओं में अपना अधिकार बलपूर्वक स्थापित करना चाह रहे हैं । यही प्रबलतम कारण है कि विद्याओं के गुणों के स्थान पर विपरीत तत्त्वों का उग्रतापूर्वक बाहुल्य हो रहा है । इस स्थिति में कहा से सद्गुणों का प्रचार होगा ? क्यों न विनय के स्थान में अविनय का साम्राज्य हो ? विवेक के स्थान पर भी अविवेक कुपित हो रहा है । सद्गुणों पर दुर्गुणों की क्यों न विजय हो क्यों नहीं स्वेच्छाचार विहार प्रसार बढ़ेगा । तो फिर ज्ञान वैराग्य और धर्म पंगु क्यों न हो ? अधर्म अज्ञान विषयानुराग क्यों नहीं बढ़ेगा ? भगवद् भक्ति और उपासना के स्थानों में दुष्कर्म दुराचार आदि के नग्न नर्तन की कहाँ रोक ? इस प्रकार ईश्वरवाद के स्थान पर अनीश्वरवाद और शास्त्रों के प्रमाणों में कुतर्कवाद फैल रहा है । वीरता के स्थान पर कायरता अथवा

भगोड़ापन आ रहा है । दया के घर में क्रूरता घुस रही है । सहिष्णुता के पैर को उद्दण्डता के द्वारा तोड़ दिया गया । अधिक क्या कहूँ मानवता का सारा स्वरूप ही विक्रत हो गया है । यह सब अनधिकारी को विद्या प्राप्त कराने का ही दुष्परिणाम है ।

हमारे दूरदर्शी त्रिकालदर्शी ऋषियों मुनियों ने अपनी सूक्ष्मदृष्टि से पहले ही यह निर्धारित कर लिया था ताकि पवित्र भारतीय संस्कृति में किसी प्रकार दोष का प्रवेश न होवे इसीलिये शास्त्रों में किसका अधिकार हो इसका पूर्व में ही विचार करके निर्धारण किया था अध्यात्म विद्या के अधिकारी कौन हैं ? इसीलिये वर्णाश्रमों के नियम उपनियम भी बनाये गये हैं । स्वल्प प्रज्ञावान् लोगों की दूर दृष्टि नहीं हुआ करती । जिससे जिस किसी प्रकार से अतिस्वल्प शास्त्रज्ञान पाने के बाद अपने को वे महान् समझने लगते हैं । ऐसे ही लोग शास्त्र निर्माताओं तथा धर्मशास्त्रों की निन्दा किया करते हैं त्रिकाल ज्ञान से जिनकी वृद्धि सुशोभित है ऐसे महान् ऋषियों का वे अल्पज्ञ लोग गाली देकर उपहास करते हैं इसलिए यहाँ पर लेशमात्र भी विद्या का दोष नहीं है किन्तु अपात्रों में अल्पज्ञता एवं उनकी कुपात्रता का ही प्रभाव है ।

एक अन्य कारण यह भी है कि प्रत्येक देश एवं समाज की प्रकृति एवं संस्कृति भिन्न-भिन्न हुआ करती है उसी के अनुकूल उनकी वेशभूषा, भाषा साहित्य एवं आचरण हुआ करते हैं । उसी के अनुकूल चलने पर उनका कल्याण होता है और उनके व्यवहार निर्वाह भी न कि दूसरे देशवासियों का यही सनातन नियम है इसलिये किसी को किसी का भी अनुकरण नहीं करना चाहिये-क्योंकि शास्त्रों में भी इसका प्रतिपादन है ।

अपने धर्म पर मरना ही श्रेयस्कर है दूसरे का धर्म संकट में ले जाने वाला भयानक है इसलिए अपनी आत्मा का कल्याण चाहने वालों को दूसरे विदेशी लोगों के किसी भी धर्म आचारादि का अनुकरण नहीं करना चाहिए तथा न ही उसकी आलोचना करनी चाहिए ।

आज तो स्थिति यह है कि लोग अपनी भाषा, साहित्य रीतिरिवाज, एवं सदाचार परम्परा को छोड़कर विदेशी लोगों की संस्कृति एवं भाषा अपना रहे हैं, और इसमें स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं जैसे निरन्तर मधुरतम मोदक श्री खण्डादि रसयुक्त पदार्थों से तृप्त व्यक्ति नमकीन चरपरे

खट्टे लहसुन तथा प्याज से दुर्गन्धित पदार्थों की ओर अग्रसर होते हैं, वैसे ही आज भारतीय लोग विदेशी संस्कारों को अपना रहे हैं । और इस समय भारतीय लोग भी विदेशी संस्कारों को अपनी संस्कृति में जबरन मिलाने के लिए उत्सुक हैं अतः विपरीत संस्कारों के मिश्रण से अपनी संस्कृति में भी दूध में खटाई के मिलाने जैसी विकृति आ रही है जो स्वाभाविक है । वैसे ही मानवीय संस्कृति में संकीर्णता रूपी दोष के आ जाने से स्वाभाविक विनम्रता, विवेक, सच्चे ज्ञान, आदि का नाश अवश्यं भावी हो जाता है इसी क्रम से धर्म का विनाश परिणामतः राष्ट्र का पतन होता ही है इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि-

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात् स्वनुष्ठितात् ।'

अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी हैं एवं अपना धर्म श्रेष्ठ है दूसरे के धर्म का भली प्रकार पालन करने पर भी ठीक नहीं है । अपने-अपने कर्म में लगा हुआ व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त करता है इस प्रकार भगवान् ने अर्जुन को उपदेश दिया था किन्तु हे वत्स ! इस समय जनता में वैसी शक्ति सामर्थ्य नहीं है जो इस प्रकार का चिन्तन कर सके ।

श्री रामानन्द स्वपितृ मुख से सुन्दर सारगर्भित वचन सुन-सुनकर अपरिमित आनन्द का अनुभव कर रहे थे । इसी प्रकार अनेक प्रश्न एवं उत्तर के क्रम में सन्ध्योपासना का समय आ गया । काशी नगरी के निकट पहुँच गये । और आकाश में चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है । तथा भगवान् भुवन भास्कर ने पश्चिम दिशारूपी नायिका के विरह को दूर कर दिया है विविध वृक्षों के अनन्त शाखाओं वाले बरगद वृक्ष को देखकर उसी के नीचे रात्रि विश्राम करना सुनिश्चित किया । स्थिति के बारे में जान लिया और सन्ध्योपासना की विधि को पूराकर और रात्रि कालिक समयानुसार प्राप्त भोजन को करके शान्तचित्त से सभी सहचरों और श्री रामानन्द के साथ पिता श्री पुण्यसदन की शास्त्रीय चर्चायें चल रही थीं श्रीपुण्यसदन जी शास्त्रानुमोदित सभी का उत्तर दे रहे थे । ऐसे प्रसंगों के साथ लगभग अर्द्ध रात्रि का समय हो गया था । उसी समय अचानक उस वट वृक्ष के ऊपर वज्राघात के समान महान् घोष हुआ । और भयानक गर्जना करता हुआ काले पहाड़ जैसा अत्यन्त भयंकर एक भीमकाय प्रेत वट वृक्ष से उतर कर रामानन्द के समक्ष उपस्थित हो गया उसको देखकर रामानन्द जी ने उसकी

वैसी योनि के बारे में जान लिया और प्रश्न किया कि तुम्हें ऐसी निकृष्ट योनि क्यों प्राप्त हुई ?

प्रणाम करते हुये प्रेत ने अपनी प्रेत योनि प्राप्ति का विस्तारपूर्वक निवेदन किया- महाराज ये सब मेरे अभिमान और दुराचरण का फल है मैं शूद्र कुल में जन्म लेकर स्वल्पज्ञानमयी विद्या प्राप्त कर अपने को महान् पण्डित मानने लगा था । श्रेष्ठ कुलोत्पन्न शास्त्र ज्ञान सम्पन्न मूर्धन्य विद्वान् ब्राह्मणों का तिरस्कार करता था । सभी सन्त महन्त और विद्वानों की निन्दा करता था अधिक क्या कहूँ ? अपने को साक्षात् ब्रह्मा का पुत्र मानकर श्रेष्ठजनों से चरण सेवा करवाता था और निकृष्ट कुल में जन्म लेकर श्रेष्ठ लोगों से चरण धुलवाता और देवता की भाँति उनसे सम्मान ग्रहण किया करता था ।

मेरी जगत पिता परमेश्वर में, वेद में धर्म में तनिक भी श्रद्धा नहीं थी । मेरा मानना था कि संसार में ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है । वेद केवल स्वार्थ सिद्धि हेतु धूर्तों भांडों निशाचरादि ने बनाये हैं । जो कि मूर्खों को डराने और ग्रामीणों के गाने लायक गीत है ये वेद । धर्मशास्त्रादि की भी कल्पना अत्यन्त चतुर प्रसिद्ध सिद्धों और महर्षियों के समान अभिनय करने वाले स्वार्थ सिद्ध करने वाले मूर्ख लोगों को दास बनाने के लिये किया है । इस प्रकार अपने विचारों को फैलाने में चतुर प्रवचन के प्रचण्ड ताण्डव से भोली भाली जनता के सीधे सादे हृदय में अपनी वाणी का प्रभाव जमाने में मैं अत्यन्त निपुण था । मेरी काषाय वस्त्र की वेशभूषा को देखकर सीधे लोग विश्वास में आ जाते थे वे हमारी कुटिल नीति के विचारों का चाणक्य नीति के समान आदर करते । मुझे महान् सत्यवादी परम धार्मिक ईश्वरवादी महत्मा समझते थे । और कहते महाराज जो कहते हैं वह सभी शास्त्र सम्मत है । क्योंकि ये सभी वेद शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित है इनका कथन साक्षाद् वेदवाणी है । ये बिल्कुल यथति कहते हैं । इसके लिये मैं भलीभांति से वाचाल था । इसलिये क्यों न वो विश्वास करते ।

विद्या के गर्व में अन्धा वाचालता के अभिमान में मद मस्त मैं एक बार इसी स्थान मे आया । उस समय कोई त्रिकालज्ञ महात्मा यहाँ निवास कर रहे थे । उन्होंने मुझे भी महात्मा मानकर आदरपूर्वक मेरा सत्कार किया । अपने निकट में ही मेरी भी निवास व्यवस्था की । किन्तु वे यह नहीं जानते

थे कि "सर्पों को दूध पिलाने में उनका विष और अधिक बढ़ जाता है ।" इस न्याय से जैसे-जैसे वे मेरा सम्मान करते थे वैसे-वैसे मैं अपने स्वभाव की मलिनतावा हृदय की कुटिलता से सदैव महात्माओं विद्वानों तथा सत्पुरुषों की निन्दा किया करता था । उनके हृदय को भी मैंने इस प्रकार नई-नई निन्दा के द्वारा व्यथित कर दिया ।

एक बार वे दयालु महात्मा स्नेहपूर्वक मधुर वचनों से मुझे सदुपदेश देते हुये कहने लगे-भगवन् ! यह संसार सागर है यहाँ अनेक प्रकार के अनेक जातियों के सन्त, महन्त और विद्वान् रहते हैं । सभी में सभी गुण नहीं होते । गुणवानों में भी कुछ अवगुण होते हैं । तथा गुणहीनों में भी कुछ गुण देखे जाते हैं । इसी का नाम संसार है । अतः सन्त एवं महात्मा लोग हंसों की भाँति नीरक्षीर का विवेक करने वाले होते हैं । जो केवल गुणों को ग्रहण करते हैं, अवगुणों को नहीं । क्योंकि गुण रूपी मोतियों को ग्रहण करने में हंसों के समान महात्मा लोग ही होते हैं दूसरे नहीं इसलिये आप को भी वैसा ही होना चाहिये । किन्तु उनके इस उपदेश से मुझे अधम का हृदय शान्त नहीं हुआ, वरन् द्वेष की अग्नि से और अधिक जल उठा । दुरभि मान वश मैंने उपदेश देने वाले उस महात्मा की अवहेलनाकी । प्रवचन का उपहास उड़ाया । अतः उन्होंने मुझे दुर्वृत्त को दण्ड देने के लिये तत्क्षण शाप दे दिया, और कहा अरे मूढ़ दूरभिमानी । प्रच्छन्न साधु वेश में तुम साक्षात् ब्रह्म राक्षस हो । सज्जनों की निन्दा करने से रूकते नहीं हो । मनीषियों एवं महान् पुरुषों के प्रति तुम्हारी श्रद्धा नहीं है । सज्जनों के प्रति श्रद्धा सत्कार नहीं करते, विद्वानों के समूह का सम्मान नहीं करता न अपनी प्रवृत्ति को कम करता है ।

अतः विद्वज्जनों की निन्दा करने से उत्पन्न पाप के प्रभाव से प्रेत योनि प्राप्त कर प्रायश्चित करो ।

इस प्रकार महात्मा के वाग्वज्र से शीघ्र ही मैं इस रूप में आ गया । व्याकुल होकर महात्मा जी के चरणों की शरण ग्रहण की । बारम्बार क्षमा याचना करने से उनको मेरे ऊपर दया आ गयी । दुर्दशाग्रस्त मुझ को देखकर दयालु महात्मा ने प्रेत योनि से मुक्ति के लिये उन्होंने मुझे आदेश दिया- कि श्री रामावतार की तरह भूतल में पुनः कलिकाल में अवतरित होने वाले श्री रामानन्द नामक ब्रह्मचारी अपने पिता श्री के साथ विद्याध्ययन के लिये काशी

जाते समय यहीं वट वृक्ष के नीचे रात्रि में विश्राम करेंगे । उनकी चरण शरण लेने से तुम्हारा उद्धार होगा । ऐसा कहकर वे मौन हो गये । तब से मैं इसी आश्रम में इसी वट वृक्ष के ऊपर निवास कर रहा हूँ । वे महात्मा समाधि में लीन होकर भगवद्धाम चले गये । मैं उनके आदेशानुसार आपके दर्शनों की कामना से यहीं रहकर आपकी प्रतीक्षा करता रहा, आज दर्शन सौभाग्य प्राप्त कर आपकी कृपा से प्रेत योनि का परित्याग करके मैं भी भगवद्धाम प्राप्त करूँ, आप ऐसी कृपा करें । हाँ ठीक है-श्री रामानन्द के इतना कहते ही वह प्रेत योनि से मुक्त हो गया । इस प्रकार अद्भूत चमत्कार को प्रत्यक्ष अपनी आंखें के सामने देखकर सभी आश्चर्यचकित हुए और श्रीपुण्यसदनजी भी अपने को कृतकृत्य मान रहे थे ।

तेरहवाँ परिच्छेद

अगले दिन प्रातः कालीन अपनी-अपनी क्रियाओं को सम्पन्न कर वे पुनः आगे बढ़े । शनैः शनैः चलते हुये श्री विश्वनाथ जी से अधिष्ठित एवं अत्यन्त प्रतिष्ठित ताप पाप प्रक्षालन में अनुपम भगवती भागीरथी से आवेष्टित संन्यासी जनों से सुसेवित विद्या वैभव की मूर्ति मती नगरी काशी में आनन्दपूर्वक पहुँच गये ।

जब समस्त परिकरों के साथ श्री रामानन्द काशी की सीमा में पहुँचे, तब समीपस्थ ग्रामवासिनी भद्र महिलाओं ने अपने हाथों में कुन्द कुटज आदि के पुष्पों की मालाओं, शीतल जल से भरे हुए कलशों के साथ मंगल शकुन प्रदर्शित करते हुये मन्द-मन्द मुस्कराती हुई श्री रामानन्द बटु के दर्शन लाभ से अपने नेत्रों को सफल करती हुई इकट्ठी हो गयीं ।

कोई महिला दधियुक्त भाण्ड सिर में लेकर आ रही थी । कुछ दूर्वादल पल्लव और श्रीफल से युक्त जल पूर्ण कुम्भ लिये हुये थीं कुछ के हाथों में श्री फल थे कोई समस्त पूजन सामग्री से युक्त थाली को हाथ में लिये हुए, अन्य विविध मधुराति मधुर फलों जैसे केला, अनार, नारंगी, सेब, बेर आदि उपहारों को लिए हुए थीं । कुछ अपने-अपने खेतों से उत्पन्न गाजर शकरकन्दादि को हाथों में लिए हुए झुण्ड की झुण्ड मधुराति मधुर मांगलिक गीतों को गाती हुई आ रही थी ।

आकर सभी ने घुँघराले केश और मञ्जुलभेष वाले श्रीरामानन्द बटु का सत्कार करते हुये भेंट सामग्री से अभिनन्दन किया । भालपट्ट में तिलक कर फूलमाला पहिनाकर नारिकेल फल हाथ में देकर शुभाशीष से अभिसिंचित किया । व्यवहार कुशल श्री पुण्यसदन ने भी सौभाग्योपयोगी वस्तुओं को प्रदान कर उनका यथायोग्य स्वागत किया और बटु के ऊपर न्यौछावर करके सभी को द्रव्य दान किया ।

समस्त व्यावहारिक परम्परा के सम्पन्न हो जाने पर श्री रामानन्द बटु की शरण में आकर महिलाओं ने निवेदन किया-महाराज ! एक समय था जब भारतीय नारियाँ अपने पतिव्रत धर्म को सर्वाधिक महान् समझती थी ।

पतिवृत्तधर्म को प्राणों से भी अधिक प्रिय मानती थी । और उसके पालन की सभी प्रकार की सुविधा भी थी । किन्तु आज तो हम लोग केवल कामुकों की मनोरंजन सामग्री बन कर रह गई है । विलासी पुरुष नारियों को विलास सामग्री से अधिक मान्यता नहीं दे रहे हैं । कामुक लोगों ने नये-नयें प्रलोभन देकर अपने माया ज़ाल में निबद्ध कर नारियों के जीवन को नारकीय बना दिया है जहाँ अत्यन्त प्रताड़ित होने से अत्यन्त दुःखी होती हुई भी वहाँ से अपने को निकालने का कोई मार्ग नहीं पाती । न हि किसी अन्य सम्बल का आश्रय मिल पाता है जिसके द्वारा अपना उद्धार करने में सक्षम हो ।

अत्यधिक क्या कहा जाय ? हम लोगों की सौभाग्य शक्ति, दाम्पत्य गौरव, पारस्परिक दाम्पत्यानुराग, हृदय में वात्सल्य की उत्कृष्टता, निश्छल व्यवहार, सभी प्रकार की धर्माचरणता, कार्यकुशलता पतिसेवा परायणता एवं निश्छल व्यवहार आज पूर्ण रूप से निस्तेज हो गया है । अतः आपसे प्रार्थना है कि हम नारियों के उद्धार का कोई मार्ग बताइये । अतः आप ऊपर से दिखाई देने वाला वस्तुतः तेज रहित स्त्रित्व हम लोगों को लज्जित कर रहा है अतः हम आप से प्रार्थना करती हैं कि हमारे उद्धार का कोई उपाय दिखावें । धर्म कर्म से बाधित मोहजाल में फँसी हुई सर्वथा अनाथा हमारी रक्षा कीजिये । हम सभी आपकी शरण में आयी है ।

इस प्रकार स्त्रियों के द्वारा शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना को सुनकर दया से द्रवित हृदय वाले वटु श्रीरामानन्द जी ने पिताजी के साथ सभी को आश्वासन प्रदान किया ।

मंगलमयी देवियों ! जो कुछ भी आप लोगों ने कहा-वह ठीक ही है । पुरुषों का ऐसा आचरण स्वदेश की परम्परानुसार नहीं है । हमारी भारतीय संस्कृति के ऊपर विदेशी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है । उन्हीं के आचरण का अनुकरण, उन्हीं की संस्कृति का अनुकरण आज सभी लोग कर रहे हैं । जब तक विदेशी शिक्षा दीक्षा को और उनके सम्पर्क को जड़ से समाप्त नहीं कियां जायेगा तब तक आप लोगों के इस दुर्गतिजन्य कष्ट के समाधान की व्यवस्था का शुभारम्भ नहीं हो सकेगा ।

यह अनुभव में दिखाई दे रहा है कि उन पतित आचरण मर्यादा रहित स्वेच्छाचारियों का परम स्वतन्त्र व्यवहार देखकर उनकी बाहरी

चकाचौंध की चमत्कारिता से अन्धे हुए भारतीय युवक युवतियों की उनके अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का जब तक अन्त नहीं होगा तब तक कुछ भी होने जैसा प्रतीत नहीं होगा। इस समय तो स्वच्छन्दाचरण की बाढ़ आ रही है उस प्रचण्ड बाढ़ में चंचल चित्तवाले रसिकों के चित्त तिनके के समान बह रहे हैं यह प्रवाह सीमा रहित दिखायी देता है जिसके कारण परम्परा प्राप्त सन्मार्ग दिखाई नहीं देता। इस समय तो अन्धानुकरण के समान भारतीय नागरिक युवक-युवतियाँ आचरण कर रहे हैं अधिक क्या कहूँ ? प्रतिस्पर्धा के युग में प्रवाहमान ग्राम बधुएं भी प्रायः पुरुषों से चार हाथ आगे दिखायी देती हैं किन्तु इन सबको यह नहीं भूलना चाहिए कि अन्धानुकरण से सही मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती, अपितु विनाश के बड़े अन्धकार युक्त गड्ढे में पड़ेंगे।

आत्मनिरीक्षण वाली दृष्टि से यह विचार करना चाहिए कि भारतीय सुकुलीन, सदाचारयुक्त, सुशील, युवतियाँ देव वधुओं के समान प्रदर्शनी में प्रदर्शन की वस्तु नहीं हो सकती। ये तो गृहस्थाश्रमियों की गृहस्वामिनी होकर समस्त गृहस्थी के व्यवहार का पालन करती है और समस्त परिकरों को अनुशासित करती हैं अधिक क्या कहूँ ? विवाह कर्म में पाणिग्रहण संस्कार के उपरान्त ये अपने प्रियतम की हृदयेश्वरी होकर पति के घर में पदार्पण कर गृह स्वामिनी कहलाती है और जैसे चन्द्रमा से आकाश सुशोभित होता है वैसे ही इनके द्वारा घर सुशोभित होता है इसीलिए कहा जाता है कि घर-घर नहीं है गृहस्वामिनी ही घर है इनकी मुखचन्द्र की चन्द्रिका से युक्त गृहदेव गृह के समान सुशोभित होता है अन्यथा भूतों के निवास जैसा अमांगलिक शून्य के समान दिखाई देता है। अतः ये तो गृहस्वामिनी के रूप से ही सुशोभित है ये ही कल्याण की परम्परा बढ़ाने वाली है ये मंगलमयी हैं. अपनी मंगलकामना के द्वारा सारे संसार को मंगलमयी बनाती हैं। जहाँ पर शास्त्रों में कहा गया है कि स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं है वह उस समय की परिस्थिति को देखकर चरितार्थ होता है जैसे जहाँ पर स्त्रियों में स्वतन्त्रता के बहाने स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति बढ़ती है वहीं ऐसे वचनों का विधान है। स्त्रियों की स्वतन्त्रता वहीं तक सहनीय है जब तक उनमें स्त्री सुलभ मर्यादा में निरंकुशता का साम्राज्य न आवे। क्योंकि स्त्रियों के स्वभाव में निरंकुशता का स्पर्श भी महान् अनर्थकारी होता है।

किञ्च भारते तु "**पतिरेको गुरुः स्त्रीणां पतिरेकः परंतपः ।**
पतिरेव परोधर्मः पतिरेव प्रजापतिः ॥ इति

महाभारत में भी लिखा है कि स्त्रियों का पति ही गुरु है पति परम तपः है पति ही परम धर्म है स्त्रियों के लिए पति ही प्रजापति है विशेष करके भारतवर्ष में पतिसेवा ही परमधर्म तथा पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्पादक मानने वाली भारतीय नारियाँ सभी से श्रेष्ठ एवं गरिमामयी हुई । इन्होंने पति सेवा स्वरूप परम तपः को करती हुई नाना प्रकार की योगी दुर्लभ सिद्धियों को भी प्रकट किया । पतिव्रत धर्म के प्रभाव से ही भारतीय ललनाओं ने भगवान् के लिए अपनी गोद को रंगभूमि बना कर जैसे नाटककार को दर्शक अपनी इच्छानुसार खेल दिखाने को बाध्य करते हैं उसी प्रकार भगवान् को सुन्दर खिलौने के समान प्रतिदिन सतत खिलाती हुई अजन्मा प्रभु की माता होने का गौरव प्राप्त कर कौसल्या, देवकी आदि जगद् वन्दनीया हो गई । भगवान् ने भी उस प्रकार की धर्मपरायण भारतीय नारी को ही अपनी माता बनने का सौभाग्य प्रदान किया, न कि किसी विदेशी अस्त व्यस्त धर्मपरायण स्वेच्छाचार विहारिणी को । भारतीय नारियों ने अनेक बार अपने धर्म और अपने देश की रक्षा की है । इस प्रकार अपने धर्म और अपने कर्त्तव्य में लगी हुई महिला यदि स्वतन्त्रता की चाह से समानता प्राप्ति की लालसा से विमोहित होकर तथा चकाचौंध को देखकर दूसरें मनुष्यों के सम्पर्क में लायी जाकर नाना प्रकार के सम्बन्ध बनाकर उनको पथ भ्रष्ट करके स्वाभाविक जीवन यापन करना चाहती है तो यह सर्वथा स्त्रीधर्म के प्रतिकूल है । किसी भी अवस्था में भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी स्त्री को अपनी गृहिणी धर्म से हटना, पतिव्रत से च्युत होना कभी भी किसी प्रकार भी हितकर नहीं है परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि इस समय मानव समाज अपने पतन को भी अपना उत्थान ही मान रहा है । निकट भविष्य में उससे होने वाले अनिष्ट को भी नहीं देख रहा है उसकी उपेक्षा ही कर रहा है । जान बुझकर जानता हुआ भी अन्जान हो रहा है ।

इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि इस समय स्वयं स्त्रियाँ अपने हानि लाभ की विवेचना किये बिना पुरुषों की तरह गाड़ी की लकीर के समान स्वेच्छा चारित्व का अनुकरण करती है । प्रतिदिन परम्परा प्राप्त स्त्रियों के आभूषण स्वरूप लज्जा, शील, शिष्टाचार विनम्रता आदि स्वकुलीय

आचरणादि की मर्यादा का एकाएक अतिक्रमण करती है । बड़े आग्रह के साथ पुरुषों की प्रतिद्वन्दीय प्रतियोगिताओं में सामान्य नित्य के कन्दुक खेलों में, व्यवहार में, क्रय विक्रय, परिभ्रमण, नौकरी आदि सेवा कार्यों में, अवसर प्राप्त समाजोद्धार के कार्य आन्दोलनादि में और तो और जेल आदि में जाने के लिए पुरुषों जैसी निरंकुशता रूपी पहाड़ के शिखर पर चढ़ जाती है । किन्तु ये सभी कार्य पुरानी मर्यादा के अनुसार गृहिणियों के लिए शोभनीय नहीं है । इस युग में बड़े उत्साह के साथ अपने घर से निकलकर बाहर पुरुषों के साथ पुरुषों जैसा सभी व्यवहार करती है । यद्यपि उनका कार्य शास्त्रानुकूल नहीं है । किन्तु काल गति के कारण सभी के मन उसी प्रकार परिवर्तित हो गये हैं । समय के अनुसार चलना चाहिये ऐसा मानकर जो करते हैं वह थोड़ी देर के लिए ही अच्छा लगता है । परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो कुछ समय बाद उन्नति की अपेक्षा पतन ही दिखाई देगा । इस प्रकार करने से तथा आचरण में हम लोग किस स्थान से किस स्थान पर आ गये हैं । हमारी व्यवस्था की क्या स्थिति हो गई है । हम स्वाधीन हुए हैं अथवा पराधीन । जिससे हम अपने घर में भी अपनी गृहिणी के हाथ का बना भोजन भी भली प्रकार सही समय पर नहीं प्राप्त कर पाते फिर दूसरे कार्यों की तो बात ही क्या ? इसलिए इस समय यह अनुमान हो रहा है कि प्राचीन काल के निर्णीत सिद्धान्तों की अवहेलना करने में हम अपनी उन्नति के स्वप्न देख रहे हैं यह आश्चर्य की बात है ।

वास्तव में भारतीय नारी का कल्याण प्राचीन परम्परा के पालन में ही सुरक्षित है । महिलाओं की समाज सेवा स्वतन्त्रता, समानता अथवा उन्नति निश्छल अनुपम भगवद् भावना से है न कि मनुष्य रूप से, विशुद्ध हृदय से सत्य और सत्वगुणा से पति सेवा से ही प्राप्त हो जाती है । लौकिक प्रदर्शनी की वस्तु के समान समानता अथवा स्वतन्त्रता जो कि क्षण मात्र के लिए तुष्ट करने वाली है उससे क्या फायदा । इस तुच्छ स्थिति को छोड़ कर पति सेवा पतिव्रत धर्म के बल से स्त्रियां विश्व में सम्मान प्राप्त करती है लोक में समस्त आधिपत्य, उनकी आज्ञा की कोई अवहेलना नहीं कर सकता । हमेशा पूज्यनीयत्व की संसार के द्वारा आदरणीयत्व तथा सर्वलोक वशित्व को प्राप्त करती है, इससे भी बढ़कर परम अलौकिक फल तो साकेत में श्री सीताराम जी की सायुज्य रूप मुक्ति को प्राप्त करती है । फिर सामान्य फल स्वर्गादि

की तो बात ही क्या ? स्वतन्त्रता समानता की प्राप्ति तो स्त्री को उसी समय प्राप्त हो जाती है जिस समय कन्या अपने घर को छोड़कर अपने पिता के द्वारा प्रदत्त वर की वधू हो जाती है । उसी समय सांसारिक क्षेत्र में पति के साथ समान अधिकार वाली हो जाती है । पति के समान ही उनको अपने परिवार में सम्मान और आधिपत्य सुलभ हो जाता है । पति के घर की समस्त सम्पत्ति की मालकिन हो जाती हैं वह इच्छानुसार सुख सम्पत्ति का उपभोग करने में सर्वतन्त्र हो जाती है यह धर्म है । वेद भगवान् की यह वाणी है कि ''अर्द्धोवा एष आत्मनः यत् पत्नी'' इति स्त्री पति का आधा भाग है क्योंकि ये पत्नी है अर्थात् पतन से रोकती है । इसीलिए इन्हें अर्धांगिनी कहते हैं और सृष्टि के प्रारम्भ में भी सर्व प्रथम ''पतिश्च पत्नी च, अभवताम्'' ''आत्मानं द्विधापातयत्'' इत्यादि पति पत्नी हुए, एक ही आत्मा का शरीर पति पत्नी रूप से दो हुये दाहिना भाग पति तथा बायां भाग पत्नी हुआ इत्यादि वचनों से स्वतः सर्व अधिकार की प्राप्ति शास्त्र सम्मत एवं स्वयं भगवान ने ही दी है, न कि किसी मनुष्य के द्वारा राजी होकर दी गई है । स्त्रियाँ स्वयं ईश्वरीय विधान के द्वारा प्राप्त अधिकार वाली होती है । उनके लिए प्रतिद्वन्दिता में पुरुषों के साथ कार्यक्षेत्र में उतर कर समानता प्राप्ति की आवश्यकता नहीं है और न ही स्वतन्त्रता के सर्वोच्च शिखर पर आरोहण की आवश्यकता और न ही संघर्ष की घोषणा की । इनकी समानता तो सांख्य शास्त्र के पुरुष-प्रकृति के समान नित्य सिद्ध है । अतः इस समय प्राप्त की प्राप्ति की क्या आवश्यकता अपितु सिद्ध साधन नामक दोष और होगा । स्त्री पुरुष की समानता के बिना लोक व्यवहार ही नहीं चलता है और ना ही कल्याण होता है ।

मनुरपि-धर्मशास्त्रे-**सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च ।**
प्राहः- **यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥**

श्री मनुजी ने भी धर्म शास्त्र में कहा है-

जिस परिवार में पत्नी पति से और पति पत्नी से हमेशा सन्तुष्ट रहते हैं वहाँ निश्चित कल्याण होता है और यदि यह प्रश्न उठे कि ऐसी समानता तो नाम मात्र की ही है । हमेशा लोक व्यवहार में तो समाज के अन्दर (देश, प्रदेश, गाँव आदि) सभी जगहों पर पुरुष के पराधीन ही नारी दिखाई देती है ।

तो ऐसा आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें तो ईश्वरीय विधान ही इस प्रकार का है । शारीरिक संरचना के समय ही ईश्वर ने इस प्रकार का भेद बनाया है, जैसे कि पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों में कुछ अंग विशेष अधिक कोमल व कठोर बनाकर संरक्षित किया है । इसी प्रकार स्त्री की अपेक्षा पुरुष में कुछ अंग विशेष तथा स्वभाव व्यवहार एवं क्रिया कलापों में भिन्नता दिखाई देती है । जैसा कि पाँच स्त्रियों के बीच में उनसे सर्वथा अपरिचित होते हुए भी पुरुष उनके बीच में निःसंकोच चला जाता है उनके बीच बैठता है उनसे व्यवहार करता है किन्तु उस प्रकार से पांच पुरुषों के बीच में अपरिचित एक स्त्री उस प्रकार से निर्भय एवं निःसंकोच व्यवहार करने में सक्षम नहीं होती । वेद में भी कहा गया है कि ''निरिन्द्रया स्त्री पुमानिन्द्रियवान्'' स्त्रियां निरिन्द्रिय अर्थात् कमजोर इन्द्रिय वाली होती है पुरुष बलवान् इन्द्रिय वाला होता है (मैत्रायणी संहिता ४-६-७) अतः इन्द्रियों की विशेषता वा न्यूनाधिक्य इत्यादि भेद के कारण दोनों का परस्पर कार्यक्षेत्र भी अलग-अलग बँटा हुआ है । यही भारतीय संस्कृति है । इससे विरुद्ध जो विदेशी संस्कृति है उसे यहाँ नहीं चलाना चाहिए और अपनी मर्यादाका उल्लंघन कदापि नहीं करना चाहिए, तथा न ही विदेशी चाल चलन को स्वीकार करें, यदि प्रमाद बस उस के चकाचौंध में पड़कर स्वीकार करता है उससे कल्याण नहीं होगा । कहा भी गया है- अपने-अपने कार्य में लगा हुआ व्यक्ति सिद्धि को प्राप्त करता है । अपने धर्म में मरना कल्याणकारी है दूसरे का धर्म भयकारी है । अर्थात् अपनी मर्यादा के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिए ।

अन्त में ब्रह्मचारी श्री रामानन्द जी ने उनको सम्बोधित करके आश्वस्त किया कि हे देवियो इस प्रकार से चिन्तित न होंवे । भगवान् आप सभी की मनोकामनाओं को पूरा करेंगे । मैं भी सामर्थ्यानुसार प्रयत्न करूँगा जिससे आप लोगों की मानसिक चिन्ता शीघ्रातिशीघ्र दूर हो जावे । वर्तमान कालिक राहू रूपी संस्कृति का सभी प्रकार से विनाश हो और भारतीय संस्कृति रूपी चन्द्रमा का शीघ्रातिशीघ्र उद्धार होवे जिससे स्थिर सुख शान्ति होवे । इस प्रकार उन सभी ने सन्तुष्ट होकर श्री रामानन्दजी की पूजा और जय जयकार किया ।

चौदहवाँ परिच्छेद

इस प्रकार धीरे-धीरे चलते हुए राह-राह पर आये हुए श्रद्धालुजनों को उपदेश करते हुए तथा शंकालुजनों की शंकाओं का समाधान करते हुए जगह-जगह पर एकत्रित हुए, धर्म परिपाटी के परिपालन में चतुर लोगों के द्वारा प्रदत्त आतिथ्य स्वीकार करते हुए, सभी के मन में आनन्द को बढ़ाते हुए, चित्त में चमत्कार का सृजन करते हुए, सज्जनों की बुद्धि में सुबोध, सुनने वालों के कानों में सरस वचनामृत को भरते हुए, दर्शनाभिलाषी जनों के नेत्रों को आनन्दामृत का वितरण करते हुए, सुन्दर उपदेशामृत के सम्वर्षण से आप्लावित हृदय वाले वटु श्रीरामानन्दजी श्री पुण्यसदन से लब्ध परितोष वाले अपने निज जनों के साथ समस्त लोकों के शिरमौर स्वरूप विष्णुपदी (श्रीगंगाजी) के पुण्य प्रवाह से परम पवित्र, तत्क्षण आनन्दानुभूति को देने वाली भगवान भूताधिपति श्री गौरीशंकर से सनाथित, सत्यवादी हरिश्चन्द्रादि की गाथाओं से प्रकाशित, चहूँ ओर प्रकाश करने वाली, गगन चुम्बी शिखरों वाली चूने से लिपे हुए सैकड़ों स्वर्णिम कलशों से सुशोभित, प्रत्येक रात्रि को चन्द्रबिम्ब को चुम्बन करने को लालायित ऊँची पताका समूह वाली सुन्दर नगरोद्यानों में रचित सुन्दर निकुञ्ज वाली, प्रायः चारों तरफ फैली हुई गुलाब के पुष्पों की पराग से सुगन्धित, विद्या वैभवादि से युक्त, बहु प्रकार के पक्षियों से सुशोभित, परकोटा वाली और सांसारिक सन्तापों से परितप्त जनों की समस्त वासनाओं को हरणकर भगवद् अनुरागोपरान्त संसार से उत्पन्न वैराग्य से युक्त मुमुक्षुओं के लिए एक मात्र निवास स्थान, विद्या विवेक के चाहने वाले मनुष्यों का आधार दुष्ट मानसिक विकारों से रहित, ब्रह्मविद्या से युक्त ऐसी तेजोमयी श्री विश्वनाथ की पुरी, समस्त गुणों की राशि स्वरूप काशी को देखकर, बड़े ही श्रद्धा अनुराग पूर्वक सैकड़ों प्रणाम रूपी उपहार समर्पित किये।

जहाँ पर विरोचन नन्दन श्री बलिजी का निग्रह करने की रूचि वाले इन्द्रादि समस्त देव गणों के मनोरथ को पूर्ण करने के मन वाले भगवान श्री वामन के पादांगुष्ठ के प्रक्षालन से उत्पन्न ब्रह्माजी के कमण्डलु से निकली

जल धारा से उत्पन्न शरीर वाली, श्री भगीरथ के तप प्रभाव से निःसृत कीर्ति पताका जैसी, समस्त भूतल निवासियों के पापों को समाप्त करने में समर्थ, दूरातिदूर से भी नाम स्मरण मात्र से पतितों को पावन बनाने वाली, भगवती भागिरथी के बहुत दूर से दर्शन मात्र से विनष्ट पाप पुंज वाले, शीतल वायु के स्पर्श से शत-शत पूरित कामना वाले श्री पुण्यसदन के सहित समस्त परिजनों एवं ब्रह्मचारी श्री रामानन्दजी का पारावार बढ़ गया और वे सभी लोग प्रणाम पूर्वक श्री गंगाजी की स्तुति प्रारम्भ कर दिये ।

हसन्ती सोल्लासं स्फुरितदशनाफेनपटलैः
तरङ्गैरुत्तङ्गैः शतशतभुजैः क्रीडनपरा ।
अनङ्गारेः प्रीतिं जनयति शिवाङ्काऽञ्चितजला
सुराऽऽसङ्गागङ्गा भवतु भवभङ्गाय भजताम् ।
शतक्रोशं दूरादपि जननि नाम स्मरति य-
स्त्वदीयं गङ्गेति क्रतुशतफलं सोऽपि लभते ।
सपापो निष्पापस्त्यजति तनुतापं तव तटे
त्यजन् देहं गेहं कलयति सुरस्नेहवसतौ ।
अनायासं त्रासं दुरितयमपाशं भवभयं
हरत्यंहो हंहो सकृदपि निपीतं शुचिपयः ।
त्वयि स्नाने ध्याने द्रढयति हृषीकेशपदयो-
रमन्दं तल्लीलानलिन-मकरन्दं स जुषते ।

सैकड़ों उत्ताल तरंग रूपी भुजाओं से खेलती मानों उल्लास पूर्वक. हँसने से फेन ही दंतावली है ऐसी कामारि के मन को प्रसन्न करती हुई शिवजी की जटाओं से निसृत जल वाली त्रिभुवन पावनी गंगा भजन करने वालों के लिए मोक्ष दायिनी होवें । हे माँ ! कोई सौ कोस दूर से भी आपके गंगा इस नाम का स्मरण करता है तो वह व्यक्ति सौ यज्ञों के फल को प्राप्त करता है । आपके तट पर यदि कोई पापी आता है तो वह निष्पाप हो त्रितापों से छुटकारा पा लेता है तथा जो आपके तट पर देह गेह की आसक्ति को छोड़कर निवास करता है तो अनायास ही भयंकर भव भय एवं यम पाश की त्रास से छूट जाता है । हे माँ ! जिसने आपके पवित्र जल को एक बार

भी पी लिया उसके पापों को आप निश्चित हरण करती है । जो आप में स्नान करता है हृषीकेश भगवान के चरण कमलों के ध्यान में दृढ़ता प्राप्त करता है तथा निरन्तर भगवद् लीला रूपी कमल के मकरन्द का पान करता है ।

इस प्रकार संसार के पापों का शमन करने वाली जगज्जननी भगवती भागीरथी का बड़े ही अनुराग पूर्वक स्तवन करके बड़ी श्रद्धापूर्वक समस्त प्राणियों के पापों को समाप्त करने में अत्यन्त समर्थ व चतुर श्री गंगाजी में बड़े ही हर्षोल्लास के साथ स्नान करके वहीं त्रिभुवन पावनी के तट पर सन्ध्यावन्दनादि समस्त दैनन्दिनी कार्यों को करके सभी अन्नपूर्णा के नाथ भगवान विश्वनाथ के दर्शनार्थ वहाँ से प्रस्थान किया । मार्ग में पड़ने वाली समस्त देव प्रतिमाओं को और काशी के दुर्गपाल श्री काल भैरव का दर्शन स्तवन आदि करते हुए विश्वनाथ भगवान का अर्चन वन्दन स्पर्शनादि से अलौकिक पुण्य को प्राप्त कर तथा कुछ विश्राम कर श्रीमद्राघवानन्दाचार्य के आश्रम में जाने की इच्छा से पुनः श्री गंगाजी के तट पर जैसे ही आए वैसे ही वटुक श्री रामानन्दजी के दर्शनार्थ बहुत से नर नारियाँ एकत्रित हो गये । वहीं पर विद्वत् समाज नाना प्रकार के ऊहापोहों से शास्त्रचर्चा करता हुआ स्थित था । एकाएक आये ब्रह्मचारी श्री रामानन्दजी के विशिष्ट आभा मण्डल मण्डित मुखारविन्द की प्रभा प्रसारित हो रही थी । उन्हें एवं उनके अनुगामी जनों को देखा । उनमें से एक विद्वान परिचय प्राप्ति की इच्छा से बड़ी विनम्रता पूर्वक श्री पुण्य सदनजी से पूछा । श्रीपुण्यसदनजी ने भी विनम्रता पूर्वक धीरे-धीरे प्रयोजनपूर्वक अपने आने के सम्पूर्ण वृतान्त का वर्णन किया ।

मान्यवर संसारके कल्याणार्थ ब्रह्मलोक से अथवा सूर्यादि मण्डल के मध्य से निकली श्री त्रिपथगा श्री कलिन्दगिरि नन्दिनी श्री यमुना एवं सरस्वती इन तीन पुनीत नदियों के संगम स्थल जो की श्री तीर्थराज प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध है वहीं का निवासी, आप सभी विद्वज्जनों का उपासक पुण्यसदन नामक ब्राह्मण हूँ । और यह रामानन्द नामक ब्रह्मचारी हैं । अपने पुत्र को स्वामी श्रीराघवानन्दाचार्य महाराज के आश्रम के विद्यापीठ में अध्ययनार्थ उसमें प्रवेश दिलाने की इच्छा से विद्याध्ययन में अत्यन्त निपुण इस वटु को लेकर आये हैं ।

पुण्यसदन नाम सुनते ही विद्वानों की मण्डली ने उनके प्रति बड़ा ही आदर भाव प्रकट किया तथा कहा कि हम सभी का यह सौभाग्य है जो आप लोगों के अचानक दर्शन प्राप्त हो गये । हम लोगों ने नाम सुन रखा था जिससे बहुत दिनों से इच्छा थी । इस बालक के लिए अत्यन्त उपर्युक्त-विद्यापीठ का चयन करके आप लोग आये हैं । जैसे आप लोग विद्वान् है आपसे भी अधिक महान् प्रभावशाली, प्रकाण्ड पण्डित, प्रवक्ता और शास्त्रों के अनुकूल आचरण करने वाला यह बालक होगा । इसकी चेष्टाओं से ज्ञात हो रहा कि भविष्य में यह कोई महापुरुष पुरुषसिंह होगा । अत: निश्चित ही श्रीराघवानन्दाचार्य महाराज के पास में रहते हुए उनके शिष्य होकर काशी की पण्डित मण्डली की शोभा बनेगा । यह हम लोगों का सैद्धान्तिक सही अनुमान है ।

इस प्रकार समस्त विद्वानों के स्नेह जनित शुभ आशीर्वाद स्वरूपिणी भावना को देखकर स्वाभाविक विनम्रता युक्त स्वभाव वाले श्रीपुण्यसदनजी ने अपने स्वभावानुरूप उन उपस्थित विद्वानों को बार-बार प्रणाम कर सम्मानित किया और वटु श्रीरामानन्दजी को भी प्रणाम करने के लिये प्रेरित किया । इस प्रकार सभी के बहु आशीर्वचनों को लेकर पण्डित श्री पुण्यसदनजी ब्रह्मचारी से सुशोभित समस्त परिकरों के साथ पंच गंगा घाट के तट पर अवस्थित स्वामी श्रीराघवानन्दाचार्यजी के श्रीमठ को प्राप्त कर श्री स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हो गये । श्रीमान् आचार्य श्री राघवानन्दजी महाराज ने भी ब्रह्मचारी का भली भाँति परिचय प्राप्त करके उन सभी के विश्राम की व्यवस्था की ।

दूसरे दिन दैनिक दिनचर्या सम्पन्न करके पण्डित श्रीपुण्यसदनजी ने बड़े विनम्र भाव से हाथ जोड़कर स्वामी श्रीराघवानन्दाचार्यजी को प्रणाम कर श्रीरामानन्दजी के हाथों को उनके कर कमलों में सौंपते हुए प्रार्थना करने लगे कि हे आचार्य चरण ! मेरा यह बालक आपकी चरण शरण में रहकर कुछ विद्या प्राप्ति की कामना से आपके चरण कमलों की रज को ही अपना सौभाग्य मानता हुआ आज से आपका हो गया है । हे स्वाभाविक करुणा सागर आप ही इसके माता-पिता एवं गुरु हैं । इसको अपनी इच्छानुसार समस्त शास्त्रों में निष्णात करने में आप समर्थ हैं इसलिए अपनी इच्छानुसार इसको शिक्षा प्रदान करें ।

श्रीराघवानन्द स्वामी शीघ्र ही श्री रामानन्द की ओर अपनी सूक्ष्मदर्शिनी सिद्धा एवं ज्ञान विज्ञानं मंडिता सामुद्रिक शास्त्र निपुणा दृष्टि को डालकर इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि यह कुमार सभी सद्गुणों से सम्पन्न महापण्डित बन कर अपनी प्रखर प्रतिभा के प्रकाश से भुवनतल को प्रकाशित करेगा। सभी शास्त्रों में पारंगत होकर अपनी वाणी के वैभव से पृथ्वी पर फैले हुये अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करेगा। आत्मबल से सभी को अपनी ओर आकर्षित कर अपने धर्म सम्बन्धी सदुपदेशों द्वारा लोगों को अपना अनुगामी बना लेगा। भक्ति भाव से युक्त हृदय से अविनयी व्यक्तियों को भी श्रद्धा एवं विनम्रता से युक्त कर तथा भगवद् भक्ति भावापन्न बनाकर सम्पूर्ण आचार्यत्व का स्थापन करेगा। और दीर्घ काल तक भगवच्चरण शरण में ही अपना जीवन बितायेगा। यह बालक महान आदर्श पुरुष होगा। तत्काल ही इन सब तथ्यों को जानकर श्री राघवानन्दाचार्य हर्षपूर्वक वहीं अपने विद्यापीठ में संरक्षण देकर प्रवेश की अनुमति प्रदान कर दी। बिना किसी सन्देह के श्रीरामानन्द को यहीं छोड़ दीजिये इस प्रकार की आज्ञा देते हुये बोले- श्री पुण्यसदन महोदय ! वस्तुतः आप पुण्य सदन ही हैं, जो इस प्रकार का पुत्र आपको प्राप्त हुआ है। यह बालक आपकी कीर्तिचन्द्रिका के द्वारा समस्त भुवनों के अन्धकार को दूर करेगा, और तुम्हारी कीर्ति पताका को फहरायेगा। आपकी मनोरथरूपी कल्पलता सैकड़ों सुरभित सुमनों से समलंकृत होकर तुम्हारे कुल के गौरव की वृद्धि करेगी। माता का अपने गर्भ में रखकर इतने दिन तक कष्ट सहना भी सफल हो जायेगा। हमारे विद्यालय का भी गौरव बढ़ेगा, और इस बालक को यहाँ के इतिहास में सदैव स्मरण किया जायेगा। मैं प्रेमपूर्वक इसे समस्त शास्त्रों के तात्विक विज्ञान का स्मरण कराऊँगा।

इस प्रकार की श्रीराघवानन्दाचार्य स्वामी के अनुपम अनुग्रह से युक्त वात्सल्य सुधा से संयुक्त अद्भुत वाणी को सुनकर श्रीपुण्यसदन के हृदय सागर में आनन्द की लहरें लहराने लगी। हर्षातिरेक से उनकी वाणी अवरूद्ध हो गई। अतः अपने निकट बैठे हुये पुत्र श्रीरामानन्द के मस्तक के ऊपर अपने पितृ-स्नेह से भरे हुये हाथ को रखकर तथा बालक को आचार्य के समक्ष बैठाकर कहने लगे-बेटा रामानन्द ! अब आप गुरु चरणों की शरण में रहकर सब प्रकार से गुरु जी की आज्ञा का पालन करते हुये

मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु सेवा में तत्पर रहकर पूर्ण मनोयोग से विद्याध्ययन करना । बेटा ! मैं तुम्हें पुनः पुनः सावधान कर रहा हूँ, कि तुम स्वप्न में भी कभी गुरुजी की आज्ञा का उल्लंघन न करना । शील का परित्याग न करना, मोह के आधीन न होना, कभी प्रमाद न करना, उद्दण्डता न दिखाना । गुरु जी की प्रसन्नता में ही तुम्हारी प्रसन्नता निहित है । उनकी चरण सेवा ही तुम्हारे कल्याण एवं सुख का साधन बनेगी । उनकी कृपा में ही अपना हित मानना । विद्याध्ययन को ही अपना एक मात्र व्रत समझना । आश्रम में रहने वाले सभी ज्येष्ठ बन्धुओं का आदर करना । तथा छोटों को अनुजवत् स्नेह देना ।

उक्तं च मनुना- **अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।**
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥

श्री मनु जी ने कहा भी है- जो नित्य अपने से बड़ों का अभिवादन करते हैं और वृद्धों की सेवा करते हैं उनकी चार वस्तुएँ नित्य बढ़ती है- आयु, विद्या, यश और बल । "अत: सदैव श्रद्ध भक्तिपूर्वक अभिमान से रहित होकर गुरुदेव आचार्यों और अपने से बड़ों का अभिवादन करे । आश्रयीय नियमों का पालन करता हुआ गुरु की सेवा करें और प्रतिदिन प्रातः सायं सन्ध्योपासना एवं जप होम करते हुए वेदों और वेदांगों के अध्ययन में कभी भी आलस्य न करना । सदैव सत्य बोले, असूया का परित्याग, काम, क्रोधादि का निवारण करते रहना । सत्य बोलना । वर्णित व्रतों को अखण्ड रूप से धारण करना । गुरुकुल के नियमों का पालन करते हुए सुखपूर्वक गुरुकुल में निवास करे और अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है ।

इसके बाद श्रीरामानन्द ने भी अपने पिता जी के चरण कमलों में अपना मस्तक रखकर उनके चरण कमलों की पराग से निज मस्तक को विभूषित करते हुए नम्रता, प्रसन्नता एवं मधुरता के साथ निवेदन किया । पूज्य पिता जी ! आप मेरी ओर से सर्वथा निश्चिन्त रहें । आपसे उत्पन्न, आपके सदुपदेश से पवित्र, एवं ज्ञान जल से अभिषिक्त, होकर मैं कभी भी नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकूँगा । आप अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता या शंका नहीं करें, और इसी प्रकार श्रद्धेया माता जी को भी मेरी ओर से निश्चित एवं निःशङ्क बनाते हुए मेरे शतशः प्रणाम उनसे निवेदित करें । आपकी यात्रा मंगलमय हो ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

तदनन्तर श्रीरामानन्द अपने पिता श्री के आदेशानुसार वहाँ विद्यापीठ के नियमों का पालन करते हुये प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में ही उठकर अपने शारीरिक कार्यों से निवृत्त होकर तथा दिन के शेष समस्त कार्य पूर्ण कर प्रतिदिन पिछले दिन पढ़े हुये विषयों की आवृत्ति करने के बाद श्री गुरुचरणों के जागरण से पूर्व ही उनकी दैनिक धार्मिक क्रियाओं की सम्पूर्ति हेतु तथा भगवत् पूजा के निमित्त तुलसी, पुष्पादि सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित कर सन्ध्यावन्दन के स्थान को परिमार्जित करके गुरुदेव को जगाने के लिये गुरुस्तवन पाठ आरम्भ करते थे।

इसके बाद अपनी पूजा उपासना समाप्त कर श्रीगुरु राघवानन्दाचार्य के विद्यालय के प्रधानाचार्य मञ्चपीठ पर विराजमान हो जाने पर सहपाठियों के यथास्थान बैठ जाने पर श्री रामानन्द भी शान्तभाव से सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार प्रणांम पूर्वक नम्रता की मूर्ति की भाँति सदैव शास्त्र चिन्तन में ही लीन रहने वाले, यम, नियम शम दम आदि से इन्द्रियों को वश में करने वाले सहपाठियों में अग्रगण्य, ब्रह्मचर्य व्रतधारक तथा वेदादि शास्त्रों के अध्येता श्रीरामानन्द अपनी बाल सुलभ चपलता का परित्याग कर श्रीगुरुचरणों के सानिध्य में रहते हुये एकाग्र चित्त से पढ़ने लगे।

इस प्रकार स्वल्प समय में ही अपनी कुशाग्र बुद्धि के कारण धीरे-धीरे व्याकरण, न्याय, मीमांसा, काव्य-कोष, पुराण ज्योतिष एवं वेदोपनिषदों का अध्ययन पूर्ण कर लिया। प्रसंग वश लौकिक एवं अलौकिक विद्याओं तथा कलाओं में दक्ष हो गये। क्रमशः बौद्ध, जैन चार्वाकादि दर्शन शास्त्रों का अवलोकन कर सांख्य वैशेषिक मतों के चिन्तन के साथ-साथ वेदान्त विज्ञान में भी पारंगत होकर समस्त ज्ञान विज्ञान साहित्यादि में भी निपुणता प्राप्त कर ली।

श्रीरामानन्द अपनी प्रतिभा की कुशलता से शास्त्रों की कठिनतम ग्रन्थियों को सरलता से सुलझाने में निपुण हो गये। वे उस समयकी शास्त्रार्थ गोष्ठियों एवं विद्वत् परिषद् की शास्त्र विवेचिनी सभाओं में उत्साहपूर्वक भाग

लेकर अपनी प्रतिभा के प्रखर प्रकाश से अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने में समर्थ हो गये थे । इस प्रकार विपक्षी विद्वानों को पराजित करने का कौशल प्राप्त कर लिया । धीरे-धीरे वहाँ की पण्डित वृन्दों की सभाओं में अपनी स्वाभाविक वैदुष्यरूपी मकरन्द की सुगन्ध से विद्वान् रूपी भँवरों के बीच अभिनव वसन्त की मादक सुगन्धि की भाँति आपकी प्रसिद्धि रूपी सुरभि सभी ओर फैल गयी ।

एक बार "सांख्य शास्त्र और ईश्वर" इस विषय पर विद्वानों की एक सभा समायोजित की गई । वहाँ पर पूर्व पक्ष की स्थापना हेतु उस समय के प्रसिद्ध एवं सांख्य शास्त्र पारंगत, शास्त्रार्थ गोष्ठियों में निपुण, कुछ वरिष्ठ विद्वान् शास्त्रार्थ हेतु उपस्थित हुये । उनका उत्तर देने के लिये सर्व सम्मति से प्रतिवाद भयंकर विपक्षी विद्वद्गजों के दन्तोत्पाटन में निपुणश्री रामानन्दाचार्य का नाम प्रस्तावित किया गया । दोनों पक्षों की मध्यस्थता करने के लिये विद्वन्मूर्धन्य श्री राघवानन्दाचार्य जी का चयन हुआ । शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया ।

पूर्व पक्ष ने प्रारम्भ किया-

नमोऽस्तु सांख्यशास्त्राख्य-विज्ञानोल्लासि चक्षुषे ।
त्यक्तेश्वराय हि जगत् कर्तृप्रकृतिवादिने ॥

ईश्वर की सत्ता के बिना संसार का कर्तृत्व प्रकृति में है ऐसा कहने वाले सांख्य शास्त्र के विज्ञान से विकसित नेत्र वाले भगवान कपिल को नमस्कार है ।

सम्मान्य अध्यक्ष महोदय ! एवं समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! प्रकृत विषय को लेकर पूर्व पक्ष का पोषण करते हुये प्रबल युक्तियों के साथ मैं प्रसन्नतापूर्वक सांख्य सिद्धान्त के गौरव का संवर्द्धन करते हुये अपनी बात रख रहा हूँ, जिसके खण्डन का कोई औचित्य नहीं है ।

इस सिद्धान्त को सरसतापूर्वक सरल पद्धति एवं भाषा में उपस्थित करना चाहता हूँ-कि ईश्वरवाद अर्थात् ईश्वर है इसकी कल्पना ही कैसे कर ली गयी ? इस पर विचार कीजिये । सम्भवत: ईश्वरवादी यही कहना चाहेंगे कि यदि ईश्वर न होता तो संसार की उत्पत्ति भी न होती । सृष्टि की उत्पत्ति में ईश्वर ही कारण है, किन्तु यह उनका भ्रम ही है । वास्तविकता यह है

कि जगत की सृष्टि रचना में प्रकृति की ही प्रधानता है । प्रकृति जड़रूप है, अखण्ड है, और त्रिगुणात्मक है । सत रज तम ये तीनों गुण प्रकृति के ही परस्पर सम-विषम भाव से संयुक्त होकर सृष्टि की रचना करते हैं । और उससे ही अनेक पदार्थों का उद्‌भव होता है । और पुरुष वह है जिसकी सन्निधि से अव्यक्त प्रकृति भी व्यक्त हो जाती है । किन्तु प्रकृति और पुरुष ये दोनों ही तत्व है और स्वतन्त्र है । यहाँ पुरुष गुण रहित है, उदासीन है किन्तु प्रकृति ही पुरुष के साथ संयोग करके महत्तत्त्व को प्रकट करती है । महत् को ही बुद्धि कहते हैं । उससे अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्माओं और मन सहित एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है पञ्च तन्मात्राओं से पंचमहाभूत और उनके परस्पर पंचीकरण प्रकार से क्रमशः समस्त सृष्टि की रचना होती है ।

निरीच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते ।
सत्तामात्रेण देवेन तथा चाऽयं जगज्जनः ॥१॥

जैसे चुम्बक की इच्छा न होने पर उसके संसर्ग से लोहा उसकी तरफ आकर्षित हो जाता है उसी प्रकार पुरुष की सत्ता मात्र से यह जड़ चेतन चल रहा है ।

जैसे अयस्कान्त मणि के संसर्ग से जड़ पदार्थ लोहे में भी गति उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पुरुष की सन्निधि से जड़ प्रकृति भी कर्तृव्य शक्ति से सम्पन्न हो जाती है ।

१ पुरुष १ प्रकृति १ महत् तत्त्व (बुद्धि) अहंकार ५ तन्मात्रायें ११ इन्द्रियाँ ५ महाभूत । इस प्रकार २५ तत्त्वों का ज्ञान कर लेने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । पञ्चतन्मात्रायें इस प्रकार है- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध । शब्द से आका, स्पर्श से वायु, रूप से तेज (सूर्य, चन्द्र-तारा आदि) रस से जल, गंध से पृथ्वी । ये पंच महाभूत-उत्पन्न होते हैं । ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं- श्रोत्र (कान) त्वक् (त्वचा) चक्षु (नेत्र) रसना (जिह्वा). घ्राण (नाक) कर्मेन्द्रियाँ ५ हैं- वाक् (वाणी) पाणि (हाथ) पादौ (पैर) पायु (गुदा) उपस्थ (मूत्रेन्द्रियाँ) एवं ग्यारहवीं इन्द्रिय मन है । कहा गया है-

''जटी मुण्डी गृही वाऽपि यत्र कुत्राऽऽश्रमे वसेत् ।
पञ्चविंशति तत्त्वज्ञो मुक्तोऽसौ नाऽत्र संशयः ॥१॥

जटाधारण करने वाला, केशरहित सिरवाला, अथवा गृहस्थ या फिर किसी भी अन्य आश्रम में रहने वाला हो, जो इन पच्चीस तत्त्वों को जान लेता है वह मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार प्रकृति पुरुष के संयोग से ही सृष्टि होती है इसमें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है ।

--०--

इसी प्रकार से चार्वाको का भी सिद्धान्त हैं । सूक्ष्माति सूक्ष्म वस्तु से प्रारम्भ होकर विशाल से विशाल पदार्थ जो भी इस जगत् में है, वे सब परमाणुओं से ही निर्मित हैं । परमाणुओं में इस प्रकार की शक्ति होती है । कि वे नाना प्रकार से अलग-अलग स्थिति में स्वयं एकत्र होते हैं और स्वयं विभाजित भी हो जाते हैं । परमाणुओं के परस्पर एकत्र होने से ही यह सब दिखाई पड़ने वाले सूर्य, चन्द्र, तारागण, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, वृक्षादि चर एवं अचर प्राणी निर्मित हो जाते हैं । ये स्वयं ही उत्पन्न होते हैं और स्वयं ही नष्ट भी हो जाते हैं । परमाणुओं का मिल जाना ही सृष्टि है और उनका अलग-अलग हो जाना ही प्रलय है । इस परमाणु व्यापार में चैतन्य नामक किसी भी शक्ति की आवश्यकता नहीं है । और नही ईश्वर तथा जीवात्मा का यहाँ कोई स्थान है । ईश्वर और जीवात्मा की कल्पना भी मन को बहलाने के लिये है शरीर ही है केवल आत्मा है । शरीर को प्राप्त कर भोगों का उपभोग करना ही मोक्ष है- कहा गया है-

अर्थात् जब तक जीवों सुख से जीवों और ऋण लेकर भी घी पिओ । जो शरीर यहीं जला दिया जाता है वह भला पुनः यहाँ कैसे आ सकता है ?

ठीक इसी प्रकार का विकास वादियों का भी मत है-

--०--

विकास वाद में ऐसी मान्यता है कि परमाणुओं में जड़ता एवं चेतनताा यह उनका स्वाभाविकगुणहै । जो अपनी अविकसित दशा में बीजरूप से परमाणुओं में स्थित है । परमाणुही महत् तत्त्व है । इसी महत् तत्त्व से प्रकृति-पुरुष दोनों का ही विकास होता है और वह विकास ही यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् है । परमाणुओं के प्रकृति नामक गुण से इस स्थूल जगत् की उत्पत्ति होती है । तथा पुरुष नामक गुण से विकसित सृष्टि की अन्तिम आकृति अर्थात् मानव रूप प्राणी की उत्पत्ति होती है । इस प्रक्रिया में ईश्वर का कोई कार्य नहीं होता । इसलिए सभी लोगों को निश्चिन्त होकर

इच्छानुसार भोग और आनन्द करना चाहिए । यही मानव देह की प्राप्ति की सार्थकता है । इसमें तनिक भी विवाद नहीं है ।

इस प्रकार नाना प्रकार के दर्शनों से ईश्वर सिद्धि का खण्डन हीं सिद्ध हो रहा है । और सृष्टि के विकास के विषय में सांख्य सिद्धान्त को ही थोड़े बहुत परिवर्तन परिवर्द्धन के साथ स्वीकार किया गया है । यह सत्य है कि सांख्य सिद्धान्त के अनुसार ही मोक्ष का उपाय करना चाहिए । कहीं पर भी ईश्वर नामक मृगमरीचिका के चकाचौंध में पड़ना ठीक नहीं दिखाई देता बस ।

इस प्रकार पूर्व पक्ष की समाप्ति होते ही जिनके मन्द हास्य से कुन्दकली के समान उज्ज्वल दन्त पंक्ति से सभा मण्डप आलोकित हो रहा था । और जो अपने मुखचन्द्र की ज्योत्स्ना से मोह रूपी अन्धकार को दूर कर रहे थे ब्रह्मचर्य की कान्ति से जो सम्पूर्ण सभा को आलोकित कर रहे थे । दण्ड, कमण्डलु मृगचर्म कौपीन आदि के साथ ही ऊर्ध्व पुण्ड्र से जिनके बारह अंगों में तिलककी शोभा हो रही थी । तुलसी की कंठी एवं यज्ञोपवीत से सुशोभित महर्षि कुमार का अनुकरण करने वाले श्रीरामानन्द के निर्भीक ।

प्रसन्न मुख कमल से निर्यात होने वाली मधुर वाणी रूपी मधु को पान करने की इच्छा से सभी की दृष्टि एक बार पुनः उन पर केन्द्रित हो गयी ।

उस समय श्री रामानन्द अपने आचार्यवर्य श्रीराघवानन्द के चरण कमलों में श्रद्धा एवं प्रसन्नता के साथ प्रणाम कर एवं उनकी आशीष परम्परा के मकरन्द का आचमन कर प्रतिपक्ष के मत को खण्डित करने हेतु तथा अपने मत की स्थापना हेतु सर्वप्रथम मंगलाचरण प्रारम्भ करते हैं-

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

सम्मानीय श्रीमदाचार्यचरण ! एवं श्रद्धेय विद्वद्‌वृन्द ! उचित तो यह था कि तथ्यों से परिपूर्ण अति गंभीरतम विषय के ऊपर निर्णय देने के लिए किसी विज्ञान एवं ज्ञान से प्रकाशित निखिल शास्त्रों का मन्थन कर चुकने वाले प्रकाण्ड पण्डित का निर्वाचन होना चाहिए था । किन्तु ऐसी व्यवस्था न करके मुझ जैसे सामान्य विद्यार्थी के सिर पर यह भार डाल दिया गया है । इस कार्य में असमर्थ होते हुए भी महापुरुषों की कृपा से उत्साहित होकर 'गुरुओं की आज्ञा बिना विचार के ही पालन करनी चाहिए'' इस सिद्धान्त को स्वीकार कर प्रस्तुत कर रहा हूँ ।